# ऋतायन

# ऋतायन

विद्यावती कोकिल

ज्योति प्रकाशन

पांडिचेरी

श्रीमां : श्रीअरविंद के पद्-पद्मों में—

यही साध है गीतों के मिस
मेरा पूरा मैं घुल जाए,
सोते-जगते चलते-फिरते
मेरा मैं तेरा बन पाए।

मेरी सत्ता इक सरिता सम
तव सागर में डूब समाए,
जीवन, वर्षा में फूलों-सम
वस्तु वस्तु का सत्य खिलाए।

सब प्रतीक निज घूंघट खोलें
रूपायन सार्थक हो जाए,
अंधे देखें बधिर सुनें औ',
सिद्धि ऋतायन की छा जाए।

# नव ज्योति चक्र

"जगदपि ब्रह्म सत्यं न मिथ्या"

(श्रीअरविन्दोपज्ञा उपनिषद् से)

आदि काल से मनुष्य की यह तीव्र अभीप्सा रही है कि उसे सत्य चाहिए, पूर्णता, अमरता व प्रकाश चाहिए, और कुलजमा कहे तो ईश्वर ही चाहिए। यद्यपि काल के महा समुद्र पर यात्रा करता यह मनुष्य अपनी सत्य-जिज्ञासा की नई नई खोजो में अपनी नन्ही नौका लेकर दूर सुदूर के तटों और जोखिम भरी गहराइयों में भटका है और कितनी ही पहाड़ियों, घाटियो व दलदलों में इसकी नाव फंसी है लेकिन वह फिर भी किसी न किसी नई आशा का बल लेकर निकल आई है और बढ़ती चली आ रही है। क्योकि इस आदि अभीप्सा ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से उसका पीछा कभी नही छोड़ा है। एक दिन वह उसे जान कर ही रहेगा।

भारतवर्ष में सत्य की यह शोध अपनी चरम सीमा पार कर गई है। परा-विद्या में कितने ऋषि-मुनियो ने आत्मा-परमात्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त करके एक अद्‌भुत शांति और आनद मे वास किया है। यह तो रही ऊर्ध्वमुखी खोज। पर संसार मे भी अपरा-विद्या के सागर में गोते लगा कर अनेक प्रकार के रत्नो पर रत्न निकाले गए है जिनसे जीवन को सजा कर बड़े ही सुन्दर ढंग से सुगठित और सज्जित किया गया है। चारों वर्णों व आश्रमों का समन्वित विचार अपने मूल में एक आध्यात्मिक विधान था। फिर भी विद्या और अविद्या दो विरोधी धाराएं ही रही है। ईशोपनिषद् कहता है—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

पर क्या विद्या-अविद्या दोनो के पार जाकर उस साम्य को यहा मानव जीवन में जिया जा सकता है? क्या दिव्य जीवन पृथ्वी पर संभव है? यदि यह संभव न होता तो यह आदि-अभीप्सा मानव हृदय में कब की मात खा गई होती। फिर प्रश्न है कि क्या दिव्य और अदिव्य या उन्नत व निम्न चेतनाओ का आपस में कोई आतरिक संबंध है? यदि ऐसा न

होता तो जड में से विकास की क्रिया ही कैसे संभव होती ? बराबर नीचे की चेतनाओं, जैसे प्राण व मन की प्रेरणा को ऊर्ध्व मन व प्राण की चेतनाओं का उत्तर व साहाय्य प्राप्त होता आया है तभी तो वे चेतनाएं यहां प्रतिष्ठित हो सकीं। पर वे चेतनाएं क्रमिक थीं और पूर्ण व अंतिम नहीं थीं। इसी लिए पूर्णता अभी यहां प्रतिष्ठित न हो सकी। केवल अति-मानसिक चेतना ही, जिसके कारण यह सृष्टि सपन्न हुई है और जो इसे बराबर धारण किए हुए है वही यहां आकर और जीवन में प्रतिष्ठित होकर इसको पूर्णता प्रदान कर सकती है। इसका पूरा उत्तर, अंतर्दर्शन, अनुभव व साक्षात्कार श्रीअरविंद ने अपनी चरम-परम अतिमानसिक सिद्धि से मनुष्य को अरपा है। यह अतिमानसिक चेतना के अवतरण का सुयोग मनुष्य को उनसे ही पहले-पहल प्राप्त हुआ है और जीवन में ही पूर्णता का झंडा गाड दिया गया है। अब सदा के लिए उसके आशा के द्वार खुल गए हैं। उन्होंने इस चेतना को पहले अपने शरीर पर उतारा और फिर श्रीमां ने अपने तप से उसे सन् १९५६ में जड़ता की कोख में उतार कर मानव विधि को ही बदल डाला है। इस प्रकार एक नए प्रकाश-चक्र का आरंभ कर दिया है। यदि अचित् में से विकास की क्रिया का पूर्व-चक्र सत्य है और यदि जडता से प्राण व मन की चेतना का उद्भव हो सका है तो जड़ता की गठरी में अभी जो कुछ बंधा पड़ा है वह भी निश्चय ही खुल कर रहेगा। श्रीअरविंद अपने दिव्य जीवन में कहते हैं, यदि पशु प्रकृति की एक ऐसी जीवित जाग्रत् प्रयोगशाला है जिसमें उसने मनुष्य की रचना की है तो मनुष्य स्वयं एक चिंतनशील और जीवित जाग्रत् ऐसी प्रयोगशाला है जिसके चेतन सहयोग से प्रकृति अतिमानव की रचना करना चाहती है। यही 'ऋतायन' की सिद्धि है जो सृष्टि में अभी भी छिपी पड़ी है। ऋतायन का अर्थ है सक्रिय सत्य की पूर्णाभिव्यक्ति।

अतिमानसिक चेतना ही सच्चिदानन्द की अभिव्यक्तिकामी वह पूर्ण चेतना है जो सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिशाली भी है। यह किसी भी निम्न चेतना की अज्ञानता के साथ समझौता नहीं करेगी, यदि यह ऐसा करती है तो पूर्ण नहीं रह सकती। यह यदि समझौता करे तो मन, प्राण व जड में जो अतिमानसिक शक्ति अनभिव्यक्त पडी है वह कैसे व्यक्त होगी ? और वह न व्यक्त हो तो उस चेतना का अवतरण यहां स्थायी कैसे बनेगा ? मन, प्राण शरीर ही तो उसका आधार हैं। तो फिर साधना की प्रक्रिया का एक मात्र तरीका है उनका अतिमन में रूपांतरण। श्रीमां ने उस चेतना को जड़ में उतारकर नीव से ही अर्थात् अचित् से चित्-विकास को सतत गति प्रदान कर दी है। इसके बिना आज के वर्तमान मन की

समस्याओं का समाधान असंभव था। यदि ऐसा न किया गया होता तो आज संसार सर्वनाश की स्थिति में पहुच गया होता। लेकिन अब उसे बचा लिया गया है।

क्या जड़ता में से प्राण ने प्रकट होकर फूलों, कोंपलों, पौधो और पेडों के मौन संकेत से हमे प्रारंभ मे ही आत्मा के प्रथम प्रस्फुटन का विशाल दर्शन नही करा दिया था? इनमें छिपी चेतनाओ का इतिहास मौन भाषा में हमें कुछ इगित नही दे गया था? पर उसे किसने समझा? इस इतिहास को भी हम आज श्रीअरविंद व मा के द्रष्टा अंतर के प्रकाश में ही पढने में समर्थ हुए हैं। मानव को ही तो फूलो मे प्रच्छन्न मौन चेतनाओं की पूर्णता को प्राप्त करना है। यह सिद्धि केवल मोक्ष के मार्ग और चित्त-वृत्ति-निरोध के द्वारा समार से मुख मोडकर साधित नही होगी। उसे मन व प्राण की सभी शक्तियो के पूर्ण स्फुरण के लिए उनका रूपातरण साधित करना और उनको अपने सत्य स्वरूप की ओर खोलना होगा। यह रूपातरण ही एक तरफ इस जीवन लीला के और दूसरी ओर उस ऐकातिक मोक्ष के बीच के अपाट्य खात को भर सकता है, जो पहले कभी नही भरा गया। इस सारी साधना के विस्तार, खिलाव व पूर्णता के आनंद का हमें उनके महाग्रन्थ 'दिव्य जीवन' मे और महाकाव्य 'सावित्री' में रसास्वादन करना होगा। मेरा इस विषय में कुछ कहना तो छोटे मुह बड़ी बात होगी।

यहां मुझे श्रीअरविंद दर्शन के विषय में कुछ कहना इसलिए आवश्यक हो गया कि मेरी इन कविताओं मे इन्ही विचारो की एक टूटी फूटी झाकी मिलेगी। यद्यपि वे भी उन विचारो का छोटे मुह बडा गान ही है। इसी लिए अत्यन्त विनम्रता व सकोच से मैं इस सकलन को ले कर आपके सम्मुख आ रही हूं। यह कोई मेरे कवि, लेखक या साहित्यकार का परिचायक नहीं, वैसा बनने का मेरा ध्येय ही कहा रहा, उसके लिए कभी तैयारी या साधना ही कहा की गई? ये कविताएं तो एक भटकते जीव की कहानी है जो ससार में आकर किसी चरम-परम ध्येय के जानने या पाने के लिए आकुल व्याकुल रहा है। उसी व्याकुलता मे वह संसार के दु ख-सुख, बाधा-बधन, राग-द्वेष, इच्छा-अनिच्छा, मोह-ममता, आकर्षण-विकर्षण, उन्नति-अवनति, ठहराव-भटकाव अभिमान और उदारता के भावों को लिए-लादे घूमता फिरता रहा। मैं बराबर इनसे बाहर निकलने का मार्ग ढूढ़ती रही, पर व्यर्थ, मुझे वह मिला नही। यह एक अनचली, अनसुनी और अननुकृत यात्रा थी। हां, एक अनजाना, अनदेखा, आग्रही पथप्रदर्शक चाहे-अनचाहे मेरे साथ लगा रहा है जिससे मैं अपना पीछा

नही छुडा पाई हूं। वह थी एक अनन्त, अजस्र और अखण्ड छन्द की 'लय' जो बचपन से ही मेरे हृदय में सागर की तरह गूंजती आई है। वह मुझ से कुछ आशा भी करती आई है जिसे मैं कभी पूरा नही कर सकी। माता-पिता ने बचपन में उसे शायद एक संगीत प्रेम कर के जाना होगा। गाधीवादी पिता ने मेरी चार-पाच वर्ष की आयु से ही खिलाफत आदि की सभाओं में इस संगीतमयता का भरपूर इस्तेमाल कर लिया था। युवावस्था में उसी को काव्य प्रेम समझा गया होगा। पर कहां? संगीत सीखने का प्रयत्न भी सफल नही हुआ। मैं संगीत की बंधी ताल-लय में कहां रह पाती थी। मैं उसके बाहर निकल जाती। और कविता में भी तो जब तक हिन्दी काव्य क्षेत्र में गीतों के प्रति आदर रहा तब तक अपनी लय के साथ सही या गलत एकता साध कर मैं चहकती रही और लोग समझते रहे कि मैं कविता अच्छी पढती हू। वे उस पर मुग्ध होते रहे। पर असल आकर्षण तो था उस 'लय' का जिसके विचार कभी व्यस्त ही नही हो पाए। पर जब कविता ने नए रूप-रग धारण किए, मुक्त छन्द के नाना प्रयोग होने लगे—कविता, नई कविता, अकविता और न जाने कितने नाम। तब मैं उस होड़ में उनके साथ न चल पाई। बस मैं फिर हर जगह लकीर से अलग होती रही। यदि काव्य ही मेरा ध्येय होता तो समय के बहाव मे औरों के साथ मैं भी बदल गई होती। पर कहा, इसी लिए कहना पडता है कि कविता मेरा साध्य नही एक साधन जरूर है।

आखिर अतर समन्वय की प्रतीक उस छन्द और लय से जीवन में कभी जुडते कभी टूटते, टूटन में कराहते और जुडने में एकता का आनद लेते और फिर उस आनंद को ढूढने, पकडते—इस सब से थक कर, हार-कर एक दिन मेरे मन ने विद्रोह कर ही दिया। मुझे लगा कि पर्दे के पीछे एक सच्चा जीवन स्पन्दित हो रहा है। उसकी सुगन्धि, उसका आनद और प्रकाश मुझे जरूर मिल सकता है। पर पर्दा फाडना होगा, दीवार ढहानी होगी। वह कैसे हटाया जाय मुझे मालूम न था। जैसे कोई तैराक बहुत दिन समुद्र में तैरते-तैरते थक कर ठीक अपनी चरम निराशा के समय एक नए द्वीप की खोज कर ले वैसे ही मैंने भी श्रीअरविंद और श्रीमा की छाया को प्राप्त कर एक दिन सतोष की सांस ली। बस फिर मेरी कविता, साहित्य-प्रेम व संगीत-प्रेम ही नहीं अपितु सभी कार्य—घर गृहस्थी के संबध, समाज सेवा व देशप्रेम की लगन आदि सभी का अर्थ लग गया। और मेरा ही क्या, देखती हूं कि संसार के दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, राष्ट्रीयता, मानव एकता और सौन्दर्य बोध व

कला बोध ही नहीं जीवन के सारे व्यापार ही मुझे इस अध्यात्म की परिभाषा के अंग बने मालूम होते हैं।

तो फिर पाठकों को यदि ये एक असगत प्रलाप भी लगें तो वे मुझे क्षमा करेंगे। एक बालक जिसे अपने स्वप्न में देखी पूरी सृष्टि, हठात् सचमुच ही देखने को मिल जाए—वहां का जीवन, लोग, उनके विचार, एक नई दिनचर्या, अभय का राज, दुख कष्टों के बीच भी प्रसन्न मुख-मुद्राएं, बूढ़ों में भी बच्चों की चंचलता, जहा मृत्यु को भी एक लीला ही समझा जाता हो—'वासासि जीर्णानि यथा विहाय। नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि॥' तो ऐसे जीवन को देखकर वह बच्चा क्या खुशी से पागल नहीं हो जाएगा और अपने भाई बहनों को उसके विषयमें कुछ सुनाना नहीं चाहेगा? अपनी आश्चर्य भरी अनुभूतियों को अपने संबंधियों पर व्यक्त करना नही चाहेगा?

यह मेरी कविताओं का एक प्रतिनिधि काव्य संग्रह है। मैं देखती हूं कि अपने-आप यह मेरे अतर-विकास की एक कहानी बन गया है। इस संग्रहरूपी भवन में मैंने पाच खण्ड किए हैं। प्रथम खण्ड तो मेरे भवन की नींव ही है अर्थात् पहले मैंने श्रीअरविंद की विचार धारा को कुछ अधिक स्पष्ट करने वाली कविताओ को रखा है, जिससे पाठक कविताओं में सब जगह उनकी विचार धारा को पकड़ सके। यह एक नवीनतम विचार धारा का प्रयोग है। अत. सर्व प्रथम मैं स्वय श्रीअरविंद की ही एक कविता के अनुवाद को रखने का साहस कर बैठी हूं। यह कविता नही एक महामंत्र है। इसमें मुझे स्रष्टा, सृष्टि व सृष्टि का उद्देश्य, तीनों ही भाव एक साथ स्पन्दित होते लगते हैं। इसमें काव्य, कला का रस और कवि एक ही हो गए हैं, 'रसो वै स' साकार हो उठा है। अरुण-प्रभ गुलाब से अधिक सुन्दर और सृष्टि में सत्य, शिव, सुन्दर के भाव को एक साथ व्यक्त करने वाला दूसरा क्या प्रतीक मिलेगा? इस कविता का नाम "भागवत गुलाब" (Rose of God) रखा गया है। इसमें स्रष्टा की पांच ध्यान-सघनताओ के तपस् का वर्णन है। प्रत्येक पद मे इन्ही विभिन्न पाच नामो से उसका सबोधन किया गया है और प्रत्येक पद के अन्त मे सृष्टि के आदि स्रोत उन पांचो दिव्य भावों से पृथ्वी पर अभिव्यक्त होने की प्रार्थना की गई है। इसमे है सृष्टि का पूर्ण साफल्य, मानव जीवन का चरम प्राप्तव्य और उनकी ऋषि दृष्टि का पूर्ण संकेन्द्रण। यह कविता कुछ कठिन है इसी लिए इसका अंग्रेजी मूल अंत में दे दिया गया है।

दूसरे खंड मे मेरी व्यक्तिगत अनुभूतियों की कहानी है। 'दूर कही

जाना हैं' कविता मे इस बात का भान होता है कि मुझे किसी ऐसे वातावरण मे, ऐसे देश में जो वर्तमान समस्याओं का समाधान उपस्थित कर सकता है, जाना है। कहा, यह मै नही जानती थी। श्रीअरविंद आश्रम आने पर और श्रीमा के दर्शन व उनके संपर्क से तृप्त होने पर एक अनोखा अनुभव, उसे समझने, जानने व पाने की आकुलता, साथ ही अपनी दुर्बलताओं व कठिनाइयों और अज्ञान की अड़चन—इन सबके लिए उनके प्रति समर्पण ही एकमात्र मार्ग है, इसका निश्चय। पर, मेरे बिना प्रयत्न के अपने-आप ही प्रार्थना, लगन व भक्ति की मुद्रा में भाषा, छन्द व भाव स्वय ही यहा बदल जाते है। इनकी आत्मीयता की मस्ती पर मेरी साहित्यिक बुद्धि एक बालक की भाति ताकती रह गई है। इन गीतों की भक्ति ऐकांतिक न होकर जीवनमुखी हैं। यहा सत्ता के अंगों को अतरतम की ओर खोलकर जीवन मे ही उस शान्ति व आनंद को उतारने का यत्न है।

तीसरे खण्ड मे मेरी लय अब मुझे अपने-आप में और किसी ऐकांतिकता मे ही संतुष्ट नही रहने देती। अपने परिवेश, अपने समाज व राष्ट्र की ओर भी मन जागरूक हो जाता है। यों भी आरंभ से ही ये दोनो भाव मेरा स्वभाव थे। देश के स्वतंत्र होने तक मेरा मन देश सेवा की ओर तल्लीनता से झुका रहा है। यह मेरी अंतर्लय का एक अंश और मुद्दा ही बना रहा है। अब इस अंतर-गहराई की देशभक्ति की नई भावना में अर्थात् एक आध्यात्मिक विशालता से अभिसज्जित होने का अवसर मिलता है। मेरी लय के अधीन बना अब मेरा बालक 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि मे देखना चाहता हैं। इस खण्ड मे देश प्रेम, एकता व मानव प्रेम की कुछ कविताए आ जुडी हैं। श्रीअरविंद की मान्यता है कि भारत एक आध्यात्मिक शक्ति है, यह शक्ति ही तो संसार का केंद्र है, इसलिए भारत यदि कभी जगत्-गुरु था और आगे भी उसकी चेतना इतनी विशाल बन जाय कि अपने मे ससार की वर्तमान विचार धाराओ को समेटकर वह सब की समस्याओ का समाधान उपस्थित कर सके तो पुन. उसी कोटि में एक नई विशालता के साथ पहुच सकता है।

इन सब भावनाओ का आलिंगन करके चौथा खण्ड मानव की स्वर्णिम भावी विधि की ओर अग्रसर होता दिखाई पडता है। यहा मन, प्राण व शरीर के ऊर्ध्वीकरण की ओर विशेष दृष्टि जाती है। फिर ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों के समन्वय की प्रेरणा अनिवार्य हो जाती है। चेतना के आरोहण की गति के साथ अवरोहण की अजस्र धारा भी स्वाभाविक रूप से नीचे उतरती है। शान्ति, एकता व प्रेम की शक्तिया जब यहा

अवतरित होकर प्रतिष्ठित हो सके तभी वे स्थायी बन सकती हैं। अतः श्रीअरविंद के अनुसार मन, प्राण का रूपांतर ही एकमात्र हमारा ध्येय है। तो फिर चौथे खण्ड के अंत में यदि वह बालक अवरोहण के प्रभाव का सर्वग्राही अनुभव करे और उसकी दृष्टि अदृष्ट चीजों पर केंद्रित हो उठे तो आश्चर्य ही क्या? वह फूलों में एक नए संदेश को सुन सकता है, उनकी चेतनाओं में आत्मा के अनावरण के आकर्षण का आनंद ले सकता है। मानव शिशु भी तो एक चैतन्य फूल ही है। मन, प्राण अक्सर उसे अपनी निम्न चेतना से विकृत बना देते हैं, पर वे अपनी शुद्ध चेतना मे उसे बहुत ऊंचा भी उठा सकते हैं। यदि हमारी नई शिक्षा के लिए उठी उन्नत व नवीन जिज्ञासा आज साधना का मार्ग ग्रहण कर सके तो हम शिशु के भोले भाव को, उसकी निर्मल मुस्कान को सदा के लिए सुरक्षित रख सकते हैं और इसी संसार को स्वर्ग बनाने का मार्ग ढूंढ सकते हैं। शिक्षा के इस नवीन ध्येय को लेकर ही भविष्य के निर्माता इन शिशुओं पर कुछ लिखने की बात सोची गई है और लिखना प्रारंभ हुआ है।

जैसे आदि मे वैसे ही अंतिम खंड में श्रीअरविंद की कविताओं के कुछ अनुवादों से समापन होता है। उनके द्वारा लिखित एकमात्र गीत 'स्वप्न तरी' भी इसमे है और श्रीमां की 'प्रार्थना व ध्यान' पुस्तक से दो प्रार्थना-अंश भी। अंत में उदाहरण के लिए उनके 'सावित्री' महाकाव्य के अनुवाद का एक छोटा अंश। यह सागर की एक बूंद, यहां केवल पाठकों को उसके परिचय स्वरूप रखी गई है, जिस सागर के किनारे पहुंच कर मेरी अनंत अंतर्लय ने एक तृप्ति की श्वास ली थी। और फिर उसका यह आग्रह कि वह इस काव्य को अपनी भाषा में दिन-रात गाएगी, अद्भुत ही है। पर प्रश्न था कि इस विशाल महाकाव्य का और इसकी मांत्रिक विचार-धारा का अनुवाद क्या हिन्दी में हो सकता है? मंत्रो और ऋचाओं का अनुवाद ऋषि दृष्टि के बिना कैसा? लोक-भाषा और छन्द उस सत्य-दृष्टि को कैसे व्यक्त कर सकते हैं? पर एक अबोध बालक सभी कुछ को लेकर खेल कर सकता है। श्रीमां ने भी न जाने क्या सोचकर इस बालक को खेल करने की अनुमति दे दी। और अनुवाद का यह खेल १०-१५ वर्षों तक बिना थके एक प्रेम-परिश्रम की भांति चलता रहा। शिशु भाव मे कुछ असंभव भी संभव हो जाते है। अनुवाद के लिए छंद व शब्दों और शैली संबंधी कितनी सतर्कताएं बरतने के लिए साहित्यिक पंडितों के सुझाव आए, पर यही लोक छन्द जो अजस्र गति से मेरे भीतर गूंज रहा था इसी में मैंने बिना किसी परिवर्तन के ८०० के लगभग पृष्ठों

का अनुवाद संपन्न किया। अंग्रेजी की एक पंक्ति करीब करीब एक पं
में ठीक बैठती चली गई। जहां लय भंग होने की संभावना हुई व
मैंने अनुप्रास की चिन्ता नहीं की। जहां वह अनायास ही आता गय
आने दिया। यह अनुवाद भला बुरा जैसा भी है इसका श्रेय मेरी अन्त
को ही है। पाठक मूल से मिलाकर पढ़ेंगे तभी इस शब्दश: अनुव
के कार्य की कठिनाई को समझकर इच्छानुसार आनंद का दुग्ध-दोहन
सकेंगे।

अंत में यह समझकर कि 'ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'
भाव में मैं उन्ही को नमस्कार करके लोक संग्रह के लिए कर्म करते
और फलाफल को भी उनकी इच्छा पर छोड़ते हुए सब कुछ उन्हीं
समर्पित करती हूं।

यदि यह सच है कि जड़ मे आत्मा अंतर्लीन थी और यह अपरा प्र
प्रच्छन्न रूप से ईश्वर ही है तो भगवान् का अपने में अभिव्यक्तीक
और भीतर बाहर उनका पूर्णाविर्भाव ही सर्वोच्च अवस्था है, और मनु
के लिए यही उद्देश्य पूर्ण युक्तिसंगत और वैध है।

# अनुक्रमणिका

र्व विवृति



ाविवृति

भविष्य-दृष्टि

# ऊर्ध्व विवृति

## मम शरणम्

श्रीअरविंद मम शरणम्।

निखिल ज्योति के ज्योतिर्घन,
हे मम जीवन के जीवन,
सकल जगत् के सत्य चरम
श्रीअरविंद. मम शरणम्।

मेरे ज्ञान, भक्ति मेरी
जीवन, कर्म, प्रगति मेरी,
सब ध्येयों के ध्येय परम,
श्रीअरविंद मम शरणम्।

हृदय-हृदय के चिरवासी
जीवन-भोगी, अविनाशी
मोक्ष, काम मम धर्म धनम्।
श्रीअरविंद मम शरणम्।

हुआ व्यक्ति का मुक्तिकरण,
कहा कष्ट औ' दुख मरण,
यह तो प्रभु का विचुम्बनम्।
श्रीअरविंद मम शरणम्।

बाल वृद्ध औ' युवा प्रवर,
बढ़ो अभय निज ध्रुव पथ पर,
लिए ईप्सित चिर ज्वलितम्।
श्रीअरविंद. मम शरणम्।

डूबें महिमा में भू-जन
शांति करे तेरी शासन,
प्रेम हरे सबके संभ्रम।
श्रीअरविंद: मम शरणम्।

# भागवत गुलाब*

हे भागवत गुलाब !
नीलकातीय दिव्य गगन पर अनन्त,
उभर उठे सिन्दूरी मंगल सीमन्त,
आनन्दघन गुलाब ! हे अग्निल माधुर्य !
शतकिरणी आनँद के शतरँग भास्वर्य !
उस अनामवान के प्रफुल्लित उद्गार,
उस निगूढ़ नाम की वल्ली का सभार,
प्रकटो मानवता के हृदय को उघार,
अहो अग्नि-ज्वाल, अहो चमत्कार !

हे भागवत गुलाब !
सत्ता के शिखरों पर प्रज्ञा-उद्भास,
हे ज्योतिघन गुलाब !
चरम परम दृष्टि के हे किरण धवल द्वार !
स्वर्णमय महारहस्य अहो सुमन वर !
हे अकाल शीश पर प्रदीप्त दिवाकर !
अद्भुततम 'काल' के हे स्वर्ण अतिथिवर !
बसो अब हमारे पृथ्वीय मनस् पर।

हे भागवत गुलाब !
ओ अनन्तता के वल पाटल द्युतिसार,
मूर्तिमान शक्ति की सुशोभा रतनार,
हे शक्तिघन गुलाब !
लिए ज्योति-मंडल का हीरक उजियार,
रात्रि का अभेद्य हृदय रहे तुम विदार,
मर्त्य के संकल्प बीच जलो ज्यों अँगार,
करो अपनी योजना का परम चमत्कार,

(*) इस चिह्नवाली कविताएं श्रीअरविंद की कविताओं के भावानुवाद हैं

अरे ओ अमरता की प्रतिमा साकार !
मानव में फूट उठी दिव्यता की धार !

हे भागवत गुलाब !
ईश्वर की कामना का–'एको बहुस्याम्',
साकर यह तीव्र डंक बनें रक्तश्याम
हे प्राणधन गुलाब !
नानाविध खिलती ये पांखुरी नवीन
प्राण में गुंजायमान रंगों की वीण,
तन का रूपांतर यों करो अनायास,
छंद में ज्यों आ मिले जादुई अनुप्रास,
स्वर्ग से धरा का अब जोड़ो इक तार,
अमर औ' अजेय बनें काल के कुमार !

हे भागवत गुलाब !
शाश्वत के आनन पर छाई किरणार,
आनदमय स्मिति की इक शोभा अरुणार !
हे प्रेमघन गुलाब !
सत्ता की मानिक गहराई निर्नाम !
ईश की कृपा के जाज्वल्यमान काम !
प्रकृति गह्वरों में जो सिसक रही हार,
उसी अभीप्सा के मर्म से उठो झंकार,
उस महान् 'अद्‌भुत' का घर बने संसार,
जीवन स्वर्गानंद का चुम्बन औ' प्यार।

## दिव्य चक्र

अचित् रूप भगवान् !
तुमको कोटि प्रणाम।

सर्वज्योति, सज्ञान !
बने यहां तम म्लान,
स्वय लुप्त भास्वान् !
चरम, परम बलिदान।
लीला तत्त्व ललाम !
तुमको कोटि प्रणाम।

अन्न रूप भगवान् !
जड है महासमाधि
चित् का चिर विश्राम,
चमत्कार का देश,
अदम्य साहस धाम।
अनाम ! नाना नाम !
तुमको कोटि प्रणाम।

प्राण रूप भगवान् !
रवि, शशि तारक वृन्द
फूटे जड झकझोर,
हरिताभा तरु, पुष्प
और सिंधु का रोर।
हे अनन्तगतिकाम !
तुमको कोटि प्रणाम।

ऊर्जागत भगवान्
ली आवेश छलाग,
नापे स्वर्ग व नर्क,

न्योते अनन्त क्लेश
सहे द्वंद्व बिन तर्क।
जिज्ञासा उद्दाम!
तुमको कोटि प्रणाम।

मनरूपी भगवान्!
कसी प्राण की रास,
खोली अनन्त दृष्टि,
दिया विवेक विधान,
रच ली न्यारी सृष्टि।
जग के ईश्वर वाम!
तुमको कोटि प्रणाम!

अहं रूप भगवान्!
किए सत्य के खण्ड,
लखे खण्ड ही पूर्ण,
हुए खण्ड हित युद्ध
अन्त अतुष्ट अपूर्ण।
विकृत बने सब काम,
तुमको कोटि प्रणाम।

उदासीन भगवान्!
निपट समन्वयहीन
मन की उठी प्रतीति,
जीवन की आधार
झूठ बनी सब प्रीति।
उलटा जग-परिणाम,
तुमको कोटि प्रणाम।

मन अतीत भगवान्!
पैठे अंतर देश
हुई क्रिया सब बन्द,
देखे नीरव रूप
टूटे जग के छंद।

शुद्ध बुद्ध निष्काम !
तुमको कोटि प्रणाम।

जगत् विमुख भगवान् !
छोडा जग का मोह
जग को मिथ्या मान,
किया एक तप घोर
सत्य मोक्ष को जान।
आरोहण अविराम।
शून्या शांति विराम।
तुमको कोटि प्रणाम।

शून्य-अधृत भगवान्।
सत्य ज्ञान का तीर
गया शून्य-उर चीर,
देखे जग औ' ब्रह्म
यथा नीर औ' क्षीर,
एक सुबह इक शाम।
तुमको कोटि प्रणाम।

रात्रि-गुप्त भगवान्।
तम है आवृत सूर्य
प्रभु का ढके शरीर,
रही वस्तुएं खोल
अब प्रकाश-जागीर।
पूर्ण चेतनाकाम।
तुमको कोटि प्रणाम।

मज्ञ-अज्ञ भगवान् !
तम प्रकाश के बीच
इक मध्यस्थ महान्
जीवन-पथ पार गूढ
अन्वेषणरत ज्ञान।

पूर्ण प्रज्ञताकाम !
तुमको कोटि प्रणाम।

पूर्ण सूर्य भगवान् !
जग के रूपाकार
पूरक ज्योति समान,
माया प्रभु की शक्ति
प्रकृति, पुरुष का भान।
अतिमानस आयाम !
तुमको कोटि प्रणाम।

पूर्णकाम भगवान् !
आत्मा का ही रूप
सारे तन, मन, प्राण,
इनका सतत विकास
रूपांतर ही त्राण।
अवरोहण अविराम !
तुमको कोटि प्रणाम।

व्यक्ति व्यक्त भगवान् !
बिन्दु में भरे सिन्धु
अद्भुत रूप विधान !
मर्त्य वरे अमरत्व
अद्भुत कार्य महान् !

जगत् भागवत धाम,
रूप भागवत नाम,
सारे कर्म सकाम,
सर्वकाम निष्काम,
तुमको कोटि प्रणाम।

# मातृ-मंदिर

मातृरूप साकार।
अवचेतन की गहन गुफा के तोड पाहनी द्वार,
आज कर लिया चिर प्रकाश की गौओं का उद्धार।
सूर्य मंत्र गुजार।

जडता की सुषुप्ति को लेकर चित् सुषुप्ति के साथ,
जोड गया है किरणवल्लरित एक तुम्हारा हाथ।
स्वर्ण सेतु रचनार।

जड मे रोपित चरण तुम्हारे स्वर्गलोक में शीश,
हुआ अचेतन चेतन जग में जागे जग के ईश,
तमस् आवरण टार।

हुआ धरा पर चमत्कार औ' मिटने लगे विकार,
सत्य, शिव, सुन्दर को ले झलक उठे आकार,
आत्मा के शृंगार।

अति विक्षुब्ध हो उठे तम के जगत्-जनक विख्यात,
क्योंकि पटे जाते प्रकाश से अज्ञानो के खात,
गृहविहीन अँधियार।

भटक रहा है आखेटित वन मन, प्राणों के द्वार,
तूफानो के पर्वत उसके हुए जा रहे क्षार,
शंभु-भृकुटि-संभार।

बहा दिया है ऊर्ध्वलोक ने अपना ज्योति-प्रवाह,
डूबा जाता निशि का विस्तर तारो भँरा अथाह,
मान गया तम हार।

तव स्वरूप में पहले पहले भेटे काल-अकाल,
एक छंद में समा गए हैं स्वर्ग, मर्त्य, पाताल,
बहुता एकाकार।

वाद-विवाद बनेंगे इस थल मानो इक-इक फूल,
खिले पूर्णता के द्वादश उपवन में आनंद मूल,
सुगन्धियों के हार।

दशो दिशा को पूरे देती इनकी मधुर सुवास,
अंत किए देता पीडा का अमल, धवल मृदु हास,
शोभा वीचि-विहार।

एक नयी चेतना, शांति औ' दिव्य भोग आनन्द,
काल हुआ गर्भायित, घडियों की गति ध्यान सुमद,
घर द्वार इंतजार
जनमो सूर्यकुमार !

वारी जाती मातृ-शक्तियाँ करो खींच स्तन-पान,
अतिमानस के वीर्य ! धरा पर उतरो वृहत् महान्,
हरो धरा का भार।

जीवन में अभिव्यक्त हो उठे चारों मातृ-स्वरूप,
ज्ञान, शक्ति औ' सत्य, प्रेम सब मिलकर बनें अनूप,
आनंद पारावार।

झूठ, घृणा, अज्ञान, अशक्ति, डूबकर अपने आप,
उठे पूर्णता-सागर से बन नव-जीवन की भाप,
बरसे तोड कगार।

अति हो उठी प्रकृति-शासन की जग मे हाहाकार,
आज बदल दो मानव की विधि, मानवता व्यापार।
अहो कीमियागार !

बने धरा-वधु का विशुद्ध मन नव प्रकाश का धाम,
औ' भू-जीवन ऊर्ध्व प्रविकसित इक वट वृक्ष ललाम,
तन, प्रभु का आगार।

इस मंदिर में अदिति मातु हो प्रकट सतत निर्बाध,
जिनकी करुण भुजाओं ने हमको रक्खा है साध,
पूर्ण प्रेम अवतार।

सुगम हो गयी जीवन-यात्रा हमें मिल गया लक्ष्य,
सारे मानव प्रयत्न होंगे निश्चय सफल अवश्य,
धन्य हुआ संसार।

तुम इस 'ओरोविल नगरी' के हे अन्तर पुखराज,
यह ओरोविल नगर जगत् के अन्तर का मणिराज,
घर-घर जय-जयकार।

---

ओरोविल या कहें उषा-नगरीमें उसके केंद्र-स्वरूप मातृमंदिरका निर्माण हो रहा है। इसे हम सारे नगर के व्यक्तित्व का हृदय कह सकते हैं। "श्रीमा" की साक्षात् चेतना के प्रतीकवत् इसकी रचना हुई है। नीचे की अचेतना में अपने चरण रोपे ऊर्ध्वतम सूर्य लोक की ओर अपना शीश उठाए यह एक अतिमानसिक योगी की भांति खड़ा है।

## रूप-तपस्

यह स-रूप तप मुझे अपेक्षित।
मुझे चाहिए नही परात्पर
निराकार यह रूप तुम्हारा,
पहुँच न पाए जिस ऊंचाई
तक यह मानव हाथ हमारा,
धरा-मुकुट यह मुझे अभीप्सित।

अचित् का महा चमत्कार यह
तन, मन, प्राणिक प्रसव-प्रणेता,
जड़ता पर निज चरण रोप कर
आत्मा के सूर्य का विजेता,
धरा करेगी नभ-आलिंगित।

रूप-रूप में प्रतिरूपित यह
तपस्-अग्नि ही गढ़नहार है,
व्यक्ति-अज्ञता बना ज्ञान ही
उस अरूप का रूपकार है,
प्रकृति-यज्ञ जिससे उद्दीपित।

रूप और अज्ञान न होता
तो यह जग अभिव्यक्त न होता,
और अचित् से चित् की यात्रा
का कोई आधार न होता,
अतिमन होता नही अवतरित।

दिव्य शक्ति का तपस् यह अभी
धुधला हो पर झूठ नही है,
तम मे उसकी ज्योतिष्किरणे
आवृत हो पर अबल नही है,
यही करेगा सत्य प्रतिष्ठित।

मासल, स्नेहिल, ज्ञानिल, प्रेमिल,
यह मानव का स्वरूप प्यारा
स्पर्श, दृष्टि से ही तो अपनी
जगती का जीवन है न्यारा,
मर्त्य में अमरता विस्पन्दित।

मैं वारी इन सुख-दुखों पर
अश्रु और पुलकों पर वारी,
निज को काट गिरानेवाले
मन के तर्कों की बलिहारी,
प्रति लड़खड़ान है विकासगति।

यही व्यक्ति को और वस्तु को
प्रेम डोर में बांध कसेगा,
यों ही गिरते-पड़ते, उठते
मानव निज को पूर्ण करेगा,
एकम् को समग्र में मूर्तित।

## जीवन-क्षण

ये मेरी पूजा के क्षण हैं।
मिले मुझे मानव-जीवन मिस ये मुझको सबसे प्यारे हैं,
और निराली रीति-रहनि में ये दुनिया भर से न्यारे हैं,
ये प्रभु की करुणा के कण हैं।

तुम इनको नन्हा मत समझो मिले बिन्दु मे सिन्धु अमित है,
इन्हें अकेला मत जानो ये निज विरले क्षण में शाश्वत हैं।
एक भेंट में पूर्ण मिलन है।

एक चमत्कारी घटिका मे काल-सिधु को ये तिर जाते,
और किसी पुष्पिल स्मिति में ये एक अमरता को झलकाते,
क्षण में शाश्वत के दर्शन हैं।

इक जिज्ञासा के पखो पर जीवन-चक्र तोड उड जाते,
स्थूल इन्द्रियो को ही लेकर अनन्तता से बतिया आते,
जड़ में चित् का परिरंभण है।

मां मेरी तुम साधो इनको मैं इनको एकत्र करूगी,
डर है मुझसे बिखर न जाएं मैं इनकी माला सिरजूगी,
विविध उमगो के अर्चन हैं।

नही बताया मुझे किसी ने किंतु आज मैंने पहिचाना,
अरे अहं के दर्पी तस्कर अब इनमें से कुछ न चुराना,
ये ही मुझ निर्धन के धन हैं।

भीतर पले दानवों से जो अब बचकर ये मुझे मिले हैं,
अब इन पर मैं पहरा दूगी :
इनका ही साम्राज्य रचूगी बहुत बार ये गए छले हैं।
ये मेरी साधो के दिन हैं।

## कर्म-ध्यान

यह मेरा साक्षात् ध्यान है।
जब कार्यों में लग जाती हूँ,
पूर्ण रूप से खो जाती हूँ,
कर ऐसे चलते हैं मानो
प्रिय का ही इंगित पाती हूँ।
यह मेरे इन्द्रिय योगों का
अंतर मुकुलित सूक्ष्म ज्ञान है।

ज्ञान-भक्ति में जीवन के सग
समझौता है कब हो पाता,
कर्म-कसौटी पर ही आकर
उनको खरा उतरना होता,
प्रश्न यहां खुद यों लग जाते
मानो अंतर-आह्वान है।

मन जब आकर विघ्न मचाता
कुछ दुनियादारी सिखलाता,
तब कर्मों का पूर्ण समर्पण
उसकी भ्रांति प्रकट कर जाता,
भ्रमित विचारों के मथने को
सुदृढ़ शिला यह इक महान् है।

छिछली प्रेम-भावनाएं जब
आतुरता के नृत्य रचाती,
परंपरा की कब्रों पर जब
मृत श्रद्धाके दीप जलाती,
तब इक अंतर अग्नि फोड़कर
रच जाती नव-रूपमान है।

दर्शन जिसे ढूढते रहते
संस्कृति जिसके हित ललचाती,
औ' मानव-कल्पना न जिसको
है कोई आकृति दे पाती,
यह उस निराकार को क्षण में
जग में करता मूर्तिमान है।

जब भोगों मे यहा इन्द्रिया
शाश्वतता के हित अकुलाती,
दूर पहुँचने को अतुष्ट-सी
और कल्पना पर फैलाती,
तब यह नश्वर में अविनश्वर
का दे जाता सत्य भान है।

जबतक इक इक कर्म पूत बन
नही अग्नि-ज्वाला बन जाता,
तब तक यह मन, प्राण-सिद्धिया
पा सारी रीता रह जाता,
दिव्य कर्म ही तो मानव की
सकल समस्या का निदान है।

इसी लिए यह सकल दुख है
इसी लिए यह सकल निराशा,
ज्ञान, ध्यान को पढनी होगी
इसकी सच्ची सशक्त भाषा,
अंग अंग मे रुद्ध पड़ा जो
अनन्तता का सबल गान है।

यहां ज्ञान से सत्ता-शिखरो
के आनंद का रसास्वाद कर,
और भक्ति से उसके नन्दन-
उपवन-सम भाव में उमड़कर
बना कर्म में ही सो मुकुलित
आत्मा का पूर्णाभिमान है।

## अधूरा ही है

तब तक ध्यान अधूरा ही है
जबतक जीवन कर्म नहीं सब
अर्चन सामग्री बन जाते,
और भावनाएं विचार सब
माला बन अर्पित हो जाते,
चाहे जितनी श्वासें साधो
चाहे जितनी आंखे मूदो
तब तक प्राण अधूरा ही है।

जब तक समझा सारा दर्शन
नहीं एक कविता बन जाता,
कर्मो की तीखी धारा पर
नहीं नाच कर खरा उतरता,
चाहे जितनी पोथी बांचो
तब तक ज्ञान अधूरा ही है।

जब तक नहीं विविधता सारी
एक राग की लय बन जाती,
एक प्रेम में द्वन्द्व भावना
सप्तक के स्वर सम ढल जाती,
तब तक भजन करो कितना ही
भक्ति विधान अधूरा ही है।

टार अविद्या का पट जग में
चाहे कितनी कीर्ति कमाओ,
जब तक टार न विद्या का पट
सारे जग को कंठ लगाओ,
तब तक कितना जप-तप साधो
सब निर्वाण अधूरा ही है।

मेरा ज्ञान भजन बन जाता।
अंतर के आग्रह के सम्मुख
मेरा चिन्तक चुप हो जाता
मेरे मत्त प्रेम के आगे
सब दर्शन जीवन बन जाता।

सब कुछ आता, सब कुछ जाता
नही हृदय में कुछ टिक पाता,
अहं विसर्जित करते करते
मेरा मन दर्पण बन जाता।

उन आंसू की विकल कथा क्या,
जो चरणों का अर्घ्य बन चुके,
गिला भला क्या उन कष्टों का
जब सब विरह मिलन बन जाता।

पीड़ा मे क्या आह निकालू
और विजय में नाद करूं क्या,
सब दुख-सुख प्रिय की कटाक्ष बन
आत्मा की पुलकन बन जाता।

क्या जीवन की दिशा बताऊ
एक इशारे पर चलती हूं
पथ में आये भला-बुरा जो
अंतर का स्पन्दन बन जाता।

क्या स्वधर्म का ध्येय बखानू
जहा स्वार्थ, परमार्थ नही है,
पूजा का क्या समय बताऊ
सकल कर्म कीर्तन बन जाता।

किसे रुचिर कह कठ लगाऊ,
किसे असुन्दर कह बरकाऊ,
इन डूबी डूबी आँखो मे
अब जड भी चेतन बन जाता।

## अनचला मार्ग

गूज रही अतर में आग्रही गुंजार
जाना है उस पार हमें जाना है उस पार।

उठ रही है बहुत दूर से कही अधीर,
रात्रि का अभेद्य औ' अपार हृदय चीर
मन्द मन्द ज्योति और धीमी सी पुकार। जाना है...

पता नही ध्येय मुझे, और नई राह,
खुले पड़े सामने हैं पथ अगिन, अथाह,
कर रहा हूँ एक इशारे का इन्तजार। जाना है...

प्रेरण उठ रहे है हृदय मे यो अनूप
ले लिया जिन मस्तियों ने धर्म का स्वरूप,
चल पडा मैं एक सहज बोध के अनुसार। जाना है

धर्म और अहं यहां रहते एक साथ,
एक का भी काटना है दूसरे का हाथ,
पता न था मन को यह धर्म का करार। जाना है .

मै तो बढा अंतर मे लिए सदुत्साह,
लिए पावनी उमंग और अमित चाह,
वन गई पवित्रता ही मगर अहंकार। जाना है...

ज्यों-ज्यो सुलझाया बस उलझ गया मार्ग,
फिर मैं उसे छोड नही सका कही भाग,
मेरी सब सत्ता हो गई गिरफ्तार। जाना है...

फिर मैं पडा कभी धर्म ढोंगियो के साथ,
जाति, सम्प्रदाय ने नचाए बहु नाच,
मन की दुर्बलता से होकर लाचार। जाना है...

प्राण छटपटा रहे है और बन्द द्वार,
गिला औ' फरियादे भी हो गई बेकार,
साथी औ' संगी ही बन गए खूंखार। जाना है ..

फिर भी तो स्वप्न में सुन रहा वह पुकार,
चौंक चौक उठता हूँ एक एक बार,
आई है करने वह शायद उद्धार। जाना है .

खोजना हैं फिर अमिश्र प्रेरणा को आज,
आई थी रचने जो ईश्वर का राज,
एक दिव्य जीवन का अभिनव समार। जाना है...

हमने ही कर दिया है धर्म को बदनाम,
लेकर मन, प्राणो का एक निम्न काम,
मानवी विकास का अभिशाप व अपकार। जाना है .

पडी थी जो प्रथम दिव्य गूज कान मे,
प्रथम जागरण थी वह धर्म-भान मे,
अलग अलग किरणे है एक सूर्यधार। जाना है ..

आज एकता की इस निन्द्य हार पर,
अपनी दुर्बलता के द्वार द्वार पर,
अब हमे लगानी है एक दृढ गुहार। जाना है. .

जोहनी नहीं है हमे अब किसी की राह,
मांगनी नही है किसी और से पनाह,
पथ में कही बैठना नही है हमें हार। जाना है ..

चढना है बिन चढ़ी चढाइयो के पार,
उडना है बिन नपी ऊँचाइयों के पार,
खोलने है चेतना के बन्द वज्र द्वार। जाना है...

हरना है स्वर्ग का एकाकी अहकार,
हरना है और भयाकुल धरा का भार,
जोड़ना है स्वर्ग से धरा का हमें तार। जाना है...

रोक नही मकती परिस्थितियों की मार,
गुननी नहीं है हमें अब भाग्य की पुकार,
दिव्य नियति एक कर रही है इन्तजार।   जाना है ..

मन में मद्ज्ञान की ज्वलंतिका उमंग,
लक्ष्य भेद हाथ में सत् कार्य का निषंग,
मतत मौन प्रेम की इक ज्योति निर्विकार। जाना है...

# तीर्थ यात्री

मै तो तीरथ करने आई।
प्रति ऊषा मेरा सुपर्व है,
प्रति संध्या मेरी दीवाली,
प्रतिक्षण मेरी मधुर प्रतीक्षा
मैं प्रिय-दर्शन की मतवाली,
तीर सरिस निज पथ पर धाई।

गो कि मृत्यु के विधि-विधान ने
मेरे पथ को रुद्ध किया है,
औ' जडता के महा पाश ने
मेरी गति को जकड लिया है,
पुनर्जन्म की विधि अपनाई।

यह केवल मृत्यु की विरोधी
जीने की लालसा नही है,
मेरी सब सत्ता के 'मै' को
कोई रहा पुकार कही है,
अमरत्व की दिशा इंगिताई।

अतरतम से भभक उठी है
अब कोई गुहार अनिवारी,
जिसने मेरे सकल स्वत्व में
सुलगाई मूदी चिनगारी,
जो न जा सकी फिर बुझवाई।

यह विद्रोही अग्नि ही मुझे
जडता से पशुता में लाई,
पशुता से भी मानवता तक
किंतु यहा यह गई ठगाई,
पर मैंने [illegible] शर्त [illegible]

मेरे अंतर की ज्वाला को
बुझना तो मंजूर नहीं है,
तो फिर अपने सत्य-सूर्य में
मिलना ही इक राह बची है,
ज्वाला ने बोल दी चढ़ाई।

अब मेरी भूलों ने भी तो
मुझ पर किया रहस्योन्मोचन,
मेरा सब अज्ञान बन गया
सत्य शोध का ही उद्बोधन,
एक गुप्त कुंजी पकड़ाई।

निशि ने गोदी में दुलार कर
बस फिर सब दुख दर्द सहाया,
दिवसों ने डगमग चापों को
साथ साथ पथ तक पहुंचाया,
विधि ने मौन राह अँगुराई।

फिर तो जगकर जिज्ञासा ने
कहीं किसी की बात न मानी,
अपने पथ पर दृष्टि लगाए
चलते ही रहने की ठानी,
हँस कर सही मार्ग-कठिनाई।

इक इक दुख अनमोल समझकर
उस को अपने कंठ लगाया,
जिस ने नित्य नया साहस दे
गति को दिन दिन तीव्र कराया,
सभी मार्ग-भीतियां गिराईं।

इस दृढ़ गति ने धरा-सुखों को
सारे भय से मुक्त कर दिया,
क्योंकि दुखों का रूपांतर कर
सारे विष को चूस पी लिया,
सब निषिद्ध ड्योढ़ियां खुलाईं।

मन-आवेग-झकोरो टूटी
पथ की आनँद-मणियां वीनी,
स्वार्थों के बटमारो से सब
अपहरिता सुशक्तिया छीनी,
विधि की रूढि दिशा बदलाई।

मन प्राणों के पडें अनुर्वर
मरुस्थलों में हुई बोवाई,
जडता के कर से चेतनता
की गंगा, यमुना लौटाई,
जीवन कृषि फिर से हरिआई।

व्यर्थ कहा ये दुख पीडाएं
असफल कहा है निराशाए,
उन से ही तो गर्भाई हैं
अपनी ऊंची आकाक्षाए,
और अभीप्सा की तरुणाई।

सस्कृतियों के विप्लव क्या ये
मत्य शोध के अंतिम पल है,
जीवन के यत्रणा, ताप क्या
ये प्रसूति के मुहूर्त कल है,
देव जन्म वेला नियराई।

अब, जब तक निज ध्येय न पा ले
उस चेतना को न अपना ले,
जिससे सब कुछ व्यक्त हुआ हैं
उस को ही न स्वभाव बना ले,
यात्रा जा सकती न रुकाई।

## चेतना-उद्वर्तन

मैं जीवन के हृदय-कक्ष से उठी दिव्यतम पीर हूँ।
जला चुकी हूँ नीड़, वासना
का जड, सुखप्रद, सुन्दर,
अब उँचाइयों पर ही रचता
जाता है मेरा घर।
जोड रही भू से अम्बर को ज्योतित एक लकीर हूं।

पर्वत हो, खाई हो यात्रा
बन्द नही होती है,
अविरत स्वर्ग पिपासा कही
नही रुकने देती है।
यज्ञ ज्वाल मे बलि के हित स्वीकृत मैं एक शरीर हूँ।

आहुति दे देकर, स्वर्गों पर
विजय साधने वाला,
नर्कों को भी अपने तप से
पाट डालने वाला।
उलट पूर्ण अवगुण्ठन के देने को विकल अधीर हूँ।

मन, प्राणों को इक उन्नत
स्वभाव में ढाल ढाल कर,
उच्च चेतना के तीर्थों से
लाया गया धरा पर,
स्वर्ण देव पर अर्पित होने वाला पावन नीर हूँ।

रुक न सकूँगी कितना भी अब
लक्ष्य खसकता जाए,
अतिमानस मंजिल तक अपनी
जब तक पहुच न पाए
मैं तो प्रभु के ही तरकस मे छूटा निश्चित तीर हूँ।

# सर्व ब्रह्म

निराकार साकार मुझे क्या ?
जब आत्मा ने ही आनंद वश
खुद जड़ता का रूप लिया हो,
जब जड़ता ने निज तरंग मे
आत्मा को आकार दिया हो,
निर्विकार सविकार मुझे क्या ?

जब उस कालातीत ने स्वयं
यहां काल में जन्म लिया हो,
औ' अमर्त्य ने खुद सीमित बन
मर्त्य का चमत्कार किया हो,
मेरी कोई हार मुझे क्या ?

चरमा परमा उसी शान्ति ने
जब सब हलचल को पाला हो,
सुख से लोको की क्रीडा हित
निज वक्षस्थल दे डाला हो,
तो अशांति यह भार मुझे क्या ?

आनंद ने स्वयं ही आकर
जब दुखों का रूप धरा हो,
मानव पीडा की टीसो से
वह धीरे-धीरे उभरा हो,
संघर्षों से रार मुझे क्या ?

यदि आकारो के पर्दे में
अदृश्य का सौन्दर्य खिला हो,
उसे खोज लेने की खातिर
इन्द्रिय माध्यम हमें मिला हो,
भोगों से इनकार मुझे क्या ?

जब प्रभु के अंतर की धड़कन
इसी गुहा में सुन पड़ती हो !
उनकी स्मिति इस कर्दम पर ही
फूलों में विकची पड़ती हो,
तो परलोक विचार मुझे क्या ?

मुझे पूर्ण निश्चय है इक दिन
छिपा सूर्य पूर्णतः उगेगा,
सब ऐश्वर्यों में मुसकाता
जीवन आनँद विवृत बनेगा,
द्वन्द्वों की ललकार मुझे क्या ?

बस एक ही प्रार्थना मेरी
मेरा मैं 'तू' ही बन जाए,
स्वर्ग-नर्क दोनों में निर्भय
तेरे सँग-सँग चरण बढ़ाए,
तो स्वीकार, नकार मुझे क्या ?

# समर्पण

प्रभु मुझ मे अब अपना क्या है
अमरात्मा ने ही जीवन के
रंगस्थल मे वास लिया है,
मुट्ठी भर तन की मिट्टी मे
सीमित बन कर जन्म लिया है,
तो यदि यह सीमा असीम में
बहक जाय तो कहना क्या है ?

यदि मौलिक सृजनानँद ने ही
इच्छाओं का रूप धरा है,
इच्छाओं ने विशाल बन अब
यदि जगती को बाहु भरा है,
इच्छाओं से यदि 'आनँदघन'
उधर पडें तो अचरज क्या है ?

वह एकम् ही अहं बना था
जड़ मे चमत्कार करने को,
अगर स्वयं ही अहं भित्तियां
हो जाएं तत्पर ढहने को,
खुल जाएँ ये प्रतीकार्थ यदि
तो सब सच है सपना क्या है ?

एक एक अंतर भावों को
लेकर गंभिर विशाल बना दो,
और तुच्छ सरिता को लेकर
उसके सागर से मिलवा दो,
पूर्ण शांति मिल जाय यही यदि
तो द्वन्द्वो से डरना क्या है ?

स्थूल इन्द्रियों को यदि मेरी
छिपी सूक्ष्म दृष्टि पर चला दो,
जिसे ढूढती आई हैं ये
इनका इष्ट इन्हे पकडा दो,

निराकार साकार वना ले
तो फिर इन्हें भटकना क्या है ?

मेरे इसी सान्त के भीतर
से अनन्त की छवि झलका दो
सकल मर्त्य को उस अमर्त्य की
अपनी सीधी राह धरा दो,

जीवन में ही मुक्ति मिल सके
तो फिर इसको तजना क्या है ?

○

# लेकिन

सारा श्रम बेकार हो गया।
एकम् ने अनेक होने को
जड़ में आनंद बीज छिपाया,
पर जीवन के तरु पर अबतक
आनंद फल नहीं उग पाया।
प्रभु के इस भीषण जोखिम का सारा तप निस्सार हो गया।

बडे तपो से प्रकृति मातु ने
क्रम विकास का यज्ञ रचाया,
अपना सब वैभव अर्पित कर
मानव का अभिषेक कराया।
लेकिन अहं भोग में पड़कर मन तम का कुप्रसार हो गया।

देवों से पाए वैभव का
मनुष्य न सदुपयोग कर सका
उसे पूर्ण औ' अमर बनाकर
उन्हे समर्पित नही कर सका।
असुरों द्वारा लुटा कोष सब, उसका अमित उधार बन गया।

जिस आशा से आत्म-सूर्य ने
थी घन तम मे डुबकी मारी,
और चेतना ने अचेतना
के हाथो हँस बाजी हारी
वह प्रकाश मानव के मन की जेल मे गिरफ्तार हो गया।

अश्रुभरे नैत्रो से जननी
निज आत्मज को ताक रही है,
अपने पय की अमृत धार का
सकल मूल्य अब माग रही हैं।
अ[illegible]धरा का यह मोचक ही सकल धरा का भार हो गया।

## विवर्तन चक्र

ऐसे कब तक काम चलेगा ?
कितने नव आदर्श बने पर भाग्य एक ही पाया,
कितनी बार उठाया जग को, अंत में वही आया,
इन आदर्शों के बूते कैसे निज प्रश्न लगेगा ?

रे अधिपति मानव ! तू कब तक परवश बना रहेगा,
तुच्छ शक्तियों के फेंके दानों पर पला करेगा,
खेल खिलौनो के हित औ' आपस में लडा करेगा !

जीवन का गुलाम बन कब तक आत्मा को बेचेगा,
और प्रेम से कब तक सौदा सट्टा किया करेगा,
अरे सत्य का बोझा स्वप्न करो से नही उठेगा।

कब तक अरे मनुज आत्मा तम में यो ही भटकेगी,
कब तक बनी अनुचरी और मृत्यु कांवर ढोएगी,
कब तक अरे स्वर्ण पछी यह कीचड में घिमटेगा।
...
...
ओ मानव निज छिपी शक्ति को आज जगाना होगा,
आत्म-शक्ति से झपट, सभी कुछ अधिकृत करना होगा,
अचित् चक्र की भ्रमिता गति को आज बदलना होगा।
...
...
क्या है समय नही आ पहुँचा, औ' है विवश बनाया,
सभी पुराने संस्कारो के ढहने को उकसाया ?
पता नही है आज सम्हल कर मानव क्या कर डाले !

देख रहा हूं जाग रहा वह नए नए रूपों मे,
अमर शक्ति हो रही अवतरित इन्ही मर्त्य अंगों में,
दुख, मृत्यु को भी शायद वह कुचल पदो से डाले।

घुमा दिया है गया, विवर्तन चक्र नया जगती में
अरे किसी के हाथों से इक उन्नततम मस्ती में,
आ पहुँचा है प्रभु-मुहूर्त ही जो कि बदल सब डाले।
पता नही है आज सम्हलकर मानव क्या कर डाले।

# इससे कम नहीं

इससे कम कुछ नहीं चाहिए।
खण्ड-विखण्ड न ज्ञान चाहिए
न बिन्दु-बिन्दु विचार चाहिए
सीमाओं, प्रांतो में बांटा
नहीं हमें आवेश चाहिए।
कूल तोड़कर फूट पड़े बस
वही अनाविल धार चाहिए।

धर्मों का न कठोर नियंत्रण
न कर्तव्य का भार चाहिए,
नीति विधानों का हर पथ पर
खड़ा न पहरेदार चाहिए,
सिन्धु-लहर-सम हृदर मेंउठ
इक प्रेम का प्रसार चाहिए।

और स्वार्थ से सना सनाया
न मानवी व्यवहार चाहिए,
औ' न समस्याओं पर धूमिल
अविरत सोच-विचार चाहिए,
अमल दृष्टि से झपट पकड़ ले
उस ज्ञान का विचार चाहिए।

नहीं किसी से शक्ति चाहिए
न किसी से सम्पति चाहिए,
हमें एक गुरुमंत्र चाहिए
अंतर बल का तंत्र चाहिए,
प्रभु की मनन उपस्थिति का ही
अंतर को उपहार चाहिए।

निर्भर न किसी पर बनना है
अपना कार्य स्वयं करना है,
सभी वर्गों को लेकर संग-संग
हमें सृष्टि नवतम रचना है।
हमें देव-सी दया और
दानव-सी शक्ति अपार चाहिए।

# अंतर्विवृति

# एकनिष्ठ

एकनिष्ठ कर दे !
कुछ ऐसा वर दे !
सकल विभाजक मेरी धी को,
सब कुछ मापक चंचल मन को,
एक प्रार्थना की वेदी सम
अचल-पृष्ठ कर दे !

मेरी सब भटकी गतियों को,
औ' सारी भरमी मतियों को,
चरम-परम उस एक भाव में
चिर प्रतिष्ठ कर दे !

बिखरी सभी अभीप्साओ को,
बहकी सभी प्रार्थनाओ को,
निष्फल गई अर्चनाओ को
एकनिष्ठ कर दे !

## पहचान ले

साकी मुझे पहचान ले।
इस हार में उस जीत में,
नव वेदना की रीति में
अपना पराया जान ले।
साकी मुझे पहचान ले।

मेरे विरह की बात ही
कुछ कह रही है अनकही,
जो हो सके न मुखर कभी
मेरे नए अरमान ले।
साकी मुझे पहचान ले।

वंशी न दे वीणा न दे,
हाला न दे प्याला न दे,
पग चाप में भर ले सुभग,
मेरे सुनहले गान ले।
साकी मुझे पहचान ले।

यह अम्बुनिधि का राग है,
यह दीपकों की आग है,
यह चिर ज्वलंत सुहाग है,
जीवन नहीं है मान ले।
साकी मुझे पहचान ले।

---

यह मेरी सबसे पहली कविता है।

## दूर कहीं जाना है

जैसे दूर कही जाना है।
मुझे सुहाते नही वस्त्र ये
सुन्दर रत्नाभूषण,
फीके लगते पूर्ण चन्द्रमा
फीके लगते पूषण,
यथा दूर से मन-मानिक को मुझे ढूंढ लाना है।
जैसे दूर कही जाना है।

दिन भर मैं करती तैयारी,
निशि भर बुनती मपने,
कर्तव्यों से समय पूछती,
सपनो से वल अपने,
क्या वतलाऊं कहा चली, कुछ कहना फुसलाना है।
जैसे दूर कही जाना है।

कैसे बोधू सग-सवंधी,
कैसे कुटुम्ब कवीला,
कैसे बोधू तीर पड़ोसी,
अव चलने की वेला,
कैसे भेंटू प्राणज प्राणी, अब तो विलगाना है।
जैसे दूर कही जाना है।

युग सचित सपनो की सखिया,
घायल विलखाती है,
जो रोके है पथ, पैरों मे
लिपट लिपट जाती है,
वरज रहा पर कोई जैसे यह मव बेगाना है।
जैसे दूर कही जाना है।

आत्म-सुशासित देश जहा है
अंतर परिचित प्राणी,

वहां पहुच कर उलट जायगी
अपनी करुण कहानी,
मोच-सोचकर पिछली गाथा फिर क्या पछताना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

जिसकी आंखों में भीना उस
बांकी छवि का पानी
जिसने वह बांसुरी सुनी हो
औ' वह लय मस्तानी,
उसको एकाकी पथ पर ही केवल पतियाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

जिस पथ पर सब प्राज्ञ लुटे से,
खोए से अकुलाते,
मैं इक आहट पा जाती हूं,
पग आगे बढ़ जाते,
मौन इसी से हूं कि शोर में दुष्कर सुन पाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

कुटुंब कबीला पूछ रहा है
कब तक फिर आना है,
पर मेरा तो उत्तर सखि!
तारों में भरमाना है,
सगे जनों से कैसे कह दू, मुझे न पहिचाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

आसू आखों में अटके हैं
मुख में अटकी बानी,
भावों में लिपटी है मेरे
परवशता अनजानी,
पर, मुख पर है हास्य, कि जैसे भेद न प्रकटाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

भले बुरे दोनों को ही है
कभी नहीं ठुकराया,
मुझ पर तो मेरी भूलों ने
ही रहस्य प्रकटाया,

अपना यह बोझा लेकर ही मम पथ हलुकाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

भला बुरा सब अब तो उर का
हार बना जाता है
दृग मुग तो अब मग-शिल्प का
शृंगार बना जाता है,
आत्मा का अभिसार कि जैसे आ नियराना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

जब रुकने का प्रश्न नहीं है
चलना ही मजबूरी,
चाहे जितनी तेज लहर हों
चाहे जितनी दूरी,
पाल सिंधु में डाल दिया अब फिर क्या मुस्काना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

कौन किसी के पथ की खाई,
भला पाटनेवाला,
अपना पथ भी आप बनाना
खुद ही चलने वाला
उतना-उतना चलना जिसमें लौट नहीं आना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

ना पथ का कोई नाम रूप है
ना कोई खास निशानी,
ना कोई ध्वज और पताका
ना कोई चिह्न चिह्नानी,
ज्ञान अधपका, दीठि अधखुली भटक टोह पाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

प्रबल आंधियां घना अंधेरा
चलना ही बल मेरा,
झोंपड़ियों से औ' महलों से
लगा किसी ने टेरा,
यही एक पथ, एक वही पथ हमने भी जाना है।
जैसे दूर कहीं जाना है।

## तब और अब

मही हूँ मिला न तेरा द्वार।
महा जीवन का घन अरण्य
औ' मेरा पथ अपार,
मैं फुफकारों और दहाड़ों
बीच चली चुप मार,
क्योंकि सदा मैं कहीं दूर पर सुनती रही पुकार।

इस जीवन के कुरुक्षेत्र में
जीत हुई या हार,
अपनी जान हथेली पर रख
युद्ध किए हर बार,
क्योंकि स्वप्न में इक अमर्त्य का मिलता रहा दुलार।

देखे, छुए, सुने सब सुख
पर किए न अंगीकार,
हुआ नहीं संतोष कहीं, कुछ
कसक रही हर बार,
मेरा सबपूरन जीवन है शांत, स्निग्ध इनकार।

कितनी लहरों ने दिखलाया
अपना भीषण प्यार,
आँचल में भर लिया, कि जग का
हो न जाय अपकार,
अडिग कूल बन रोक रहा था यह तन सारे ज्वार।

आज ढह गए सकल आवरण
और ढही दीवार,
बेसुध पड़ी आज चरणों पर
मेरी अस्ति जुझार,
ओ प्राणों की प्राण! करोगी कब इस पर अधिकार?

बड़े बड़े तापस औ' ज्ञानी
साधक, सिद्धि-अगार,
जहां द्वार पर खड़े हुए हैं
मेरा कौन शुमार,
अति नगण्य मेरा यह अर्पण क्या होगा स्वीकार ?

सजग चेतना हुई आज सब
तुम्हें देख साकार,
किन्तु दृष्टि में नहीं समाता
यह विराट् आकार
मैं न पकड़ पाऊंगी तुमको लो अब तुम्हीं सँभार।

# गूंज

अब तो बहुत भ्रमी गोपाल!
पथ न मिला पर मैं मुरली की
सुनती रही गुंजार,
उलटे उलटे चल कर भी लो
पहुँची तेरे द्वार,
इस रहस्य से विस्मित हूँ मन, तन की नहीं संभाल।

रोम रोम में जिह्वा डोली
तुम्हें देख अज्ञात,
कोष कोष में जगी कथाए
युगों युगों की बात,
कैसे उर के घाव दिखाऊं पूछ रहे क्या हाल?

कितने कितने वेश बनाए,
और बनाई बात
कितने कितने दिवस बिताए
और बिताई रात,
जाने कितना पथ चल गई मुझे कहां अब ख्याल!

तन-मन के कोषागारों के
खोलो वज्र किवार,
मुक्त करो रत्निल वैभव को
तोड़ो कारागार,
औ' दिव की स्वर्णिम गौओं का तोड़ो बंधन-जाल।

मिथ्या को ही सत्य मानकर
हृदय दिया था खोल,
मेरे भोलेपन ने ही
ले लिया कपट को मोल,
खोलो यह रहस्य औ' भू को भेंटो अब भूपाल।

जग सोता था पर जगता था
मन का यह रखवाल,
जगते जगते युग बीते हैं
आंखें हुई बिहाल,
चिरसुषुप्ति में आज सुला दो, अपना जादू डाल।

# पंछी

पंछी कौन देश के वासी ?
कौन दिशा से आए हो, है
कौन दिशा को जाना,
क्या ढूंढा करते हो प्रतिपल
खोया कौन खजाना,
सब कुछ पाकर भी क्यों मिटती
मुख की नहीं उदासी ?

उड़ते उडते आ पहुँचे हो
इक माया नगरी में,
जहां कि सब कुछ बंधा पडा है
स्मृति की गुरु गठरी में,
सुस्थिर होकर सब सुधियालो
ओ अनन्त विश्वासी !

जो कुछ फेंक दिया था कासा,
पीतल समझ समझ कर,
क्या जाने वह स्वर्ण सिद्ध हो
तपस्-अग्नि में पड कर,
देखो कुछ इंगित करता है
रहसिल अंतरवासी।

रुककर तनिक थकान मिटा लो
टेर रही हरियाली,
सब रहस्य अतर में भरकर
हंसती जीवन डाली,
जाने कहा इष्ट मिल जाए
क्या काबा, क्या काशी।

हो सकता आश्चर्य किसी दिन
कोई गाफिल क्षण में,
क्योंकि ठसाठस भरा पड़ा है,
सत्य यहाँ कण कण में,
कर सकती है कुछ भी अचरज
एक अभीप्सा प्यासी।

स्पंदित हो सकता है आनँद
किसी आर्त क्रन्दन में,
दिव्य प्रेम हो सकता मूर्तित
विरहिनि की पुलकन में,
जीवन तुम्हें पुकार रहा है
ओ अवधूत उदासी।

## कारवां

किधर कारवाँ यह, चला जा रहा है ?
न अथ है, न इति है, न तिथि है न मिति है,
एक झुटपुटे में सशंकित भ्रमित है,
नही ज्ञात कुछ भी स्वय पर चकित है,
कहां से चला है, कहा जा रहा है ?

न दिन में ठहरता, न निशि मे विरमता,
न वर्षा मे रुकता, न झझा मे झुकता,
एक गुप्त आह्वान पर सब लुटाता,
बराबर ही बढता चला जा रहा है।

नही ज्ञान दिन का—यही बस नही है,
निशा का भेद भी पता कुछ नही है,
मिले एक गुर तो सुलभ हो अपर भी
सिरा हाथ कोई नही आ रहा है।

अगिन सदायो के समुद्रो को तिरता,
अनेको विकासो के शिखराग्र चढता,
और और की ध्वनि मची प्रति शिखर पर
नही तृप्ति अपनी कही पा रहा है।

परीक्षा क्षणों में कभी चीर तम को
उसे सत्य का एक आभास मिलता,
पता है ज्योति इक यही पर छिपी है
नही भीतियों को गिरा पा रहा है।

कि शाश्वत प्रदेशों का वह चिर निवासी
अमरता व आनन्द का स्वाभिलाषी
ठहर कैसे सकता है सन्तुष्ट होकर
उसी खोज में वह बढा जा रहा है।

# छांह

प्रभु यह कैसी छाह जुड़ावन !
कितना मीठा स्पर्श तुम्हारा कितनी मधुरा वाणी,
कितना पावन दरस तुम्हारा कितना मिलन सुहावन ?

कितना सुख शांतिकर यहां दुख में जीना तेरे हित,
कैसा शात अमिश्रित आनंद दुख दारिद्र्य नसावन !

मर्त्य भूमि पर बैठ अमरता की ही श्वासें भरना,
जड पंछी का प्रकाश-नभ में उड़ना कितना पावन ?

मिल जाए यह सुख का स्पर्श कही मानव-जीवन मे,
सुलझ जायं तो जनम जनम के प्रश्न पड़े उलझावन।

नित्य नवीन शपथ करके भी प्रति पल दृढ तैयारी
तनिक तनिक भी तेरे प्रति बढ़ना कितना मन भावन।

# दुर्लभ निधि

सखि ऐसी दुर्लभ निधि पाई।
सोना-चाँदी रतन पदारथ,
ज्ञान-गर्व स्वारथ परमारथ
जिस पर सारी कीर्ति कमाई
हँसि हँसि आज लुटाई।

पूछो मेरे तन से, मन से,
पूछो मेरी सकल प्रकृति से
किस अनन्त सुख के लालच में
चोला धरि-धरि आई ?

पूछो मेरे रुँधे कंठ से
बहती अश्रुधार से पूछो
इस ससीम की उस असीम से
कैसे हुई सगाई।

घाटे से वह चुकी न मेरे,
खर्चे हुई सवाई,
कोई क्या जाने जीवन में
है जो मस्ती छाई।

## प्रेम-सिंधु

मैं तो तेरे प्रेम के सिंधु परी।
अब न मुझे भारी लगती है
कष्टों की गठरी
इक इक पीडा प्रेम-अग्नि में
आनँद बन निखरी,
मेरे तन, मन, प्राणन की गति हव्य बनी सिगरी।

भाव भाव के भवन-भवन अब
एक कथा मचरी,
और कर्म की गलिन गलिन में
एकहि स्वर लहरी,
एक छत्र बस राज तुम्हारो एहि तन की नगरी।

संकेतो पर बैठू उठू कि
सोऊ और जगूं,
जोइ बनाओ सोइ बन जाऊ
अन्य सभी बिसरू,
चाकर होइ रहूँ बिस्वासी ऐसी शपथ करी।

अँखियां जनम मफल करि डारहु।
जनम जनम की कटी अधता
जिसके दर्शन भर से,
परम सलोनी मूरत लखि के
अब तुम काह निहारहु।
अँखिया जनम सफल करि डारहु।

अतर के कोने-कोने मे
अबहूँ कछु दुवकाए,
खोलो पट समपूरन अब तो
बिगरी आज सुधारहु।
अँखियां जनम सफल करि डारहु।

जीवन मिला मो कर्म उसी का,
भाव उसी की वाणी,
भुवन-मोहिनी वह प्रतिमा अब
अपने हृदय उतारहु।
अँखियां जनम सफल करि डारहु।

महा-तेज को स्रोत जतन से
अग अग अँगियावहु,
सुपमा को यह अमृत, देह के
कोर्पाह कोप भिझावहु।
अँखिया जनम सफल करि डारहु।

डूबो जात पोत जीवन को
दुविधा ग्रसित भँवर में,
अतिम हू को अंतिम अवसर
अबहूँ वात सँभारहु।
अँखिया जनम सफल करि डारहु।

## नाहि डरैहों

मैया अब मैं नाहिं डरैहों।
दौड़त दौडत थको कबहि से
पाछे दानव लागे,
पकडि लियो है तुमको कसि के
अब मैं नाहिं सकैहों।

पाप-पुण्य ने सोवत-जागत
मोहि बहुतै धमकायो,
भूत बलाय लगी जो मेरे
तेरेहि गले लगैहौं।

धन दौल्त औ' कीरति ने मिलि
बहुत दिनन भरमायो,
लेहु हमारो बोझ संभारौ
आज तनिक सुस्तैहौं।

आखिन भरि भरि देखन दै यह
भुवन मोहिनी मूरत,
चितरजिनि ! मनमोहिनि ! तुमको
सुमिरि सुमिरि सुख पैहौ।

## रहन चहौं

मैना मैं अब रहन चहौं
तैं दिगराय गगन को पंछा
ऐसो मोहि बनायो,
अब पिंजरानो मैं नान्हें भर
पंछा रहन चहौं।

राजा नहि नहि मोहि आँगन
तैं स्वाधीन बनायो,
अब कामना, वासना के बस
मैं नहि रहन चहौं।

आँखिन देखी कथा सुनाय
हृदय पावन करि डारो,
सत्य पथिक के रम्य देश अब
मैं हूँ उड़न चहौं।

मोहि उड़ाय अनन्त गगन में
ऐसो मुक्त बनायो,
तुच्छ कामना-पिंजरन में अब
छिन नहिं रहन चहौं।

## परम सुख

मैया एकहि सुख मोहि भावै।
दिन भर फिरहुँ गाय बाछा मम
खेलत, खात, बिसूरत,
साझ भए तेरी गोदी बिन
एकहु नाहिं सुहावै।

तीति, मीठे, खारे सीठे,
जिह्वा सब रस चाखै,
तेरी करुणा की मिठास बिन
मोहि सब फीको आवै।

कोई अंतर-पीर उठै तब
नयन नीर भरि लावै,
पर तेरे बिन औरनि पै निज
भेद नाहिं प्रकटावै।

तेरी करुणा ही लोरी गा
मेरे मनहि रिझावै,
औ' तेरे चेतनाकाश मे
पलनहिं डारि झुलावै।

## शिशु भाव

मा मैं दूर कहा अब जाऊ।
चाहे जितनी करो ताड़ना
और मुझे धमकाओ,
तेरे ही ढिग बाल सरीखे
रोय पीट फिर आऊँ।

तरह तरह के लोभ दिखाकर
स्वजन मुझे बहलाते,
छिन भर भी मैं पास किसी के
तुम बिन नाहिं रहाऊँ।

तीर पडोसी प्रश्न करै बहु,
आखँ भरि भरि आवै,
अपनी मर्म व्यथा मैं तुम बिन
औरनि नाहिं सुनाऊँ।

## एक अभिलाषा

मैया एकहि मन अभिलास।
दीन न बनैं और के आगे, बनो रहैं सम्राट्,
तेरे सम्मुख रहैं मनौ बिन मोल बिकानो दास।

बनैं रक्त की बूदें तेरी और हृदय की चाप,
सारी बुद्धि-भावना तेरी और श्वास-प्रश्वास।

शुचि मन मेरो बनैं चन्द्रमा रहैं साथ ही साथ,
तेरी सूर्य-दृष्टि से प्रतिपल लेतहिं रहैं प्रकाश।

ऐसो करौ कि मोड़ मोड पर फूटैं नवल-उजास,
कोखि जनम-मत परैं न तन फिर धरा-प्रेम के लास।

## अकथ्य

सखि मैं कैसे करि समझाऊँ ?
एक कहूं तो एक छूटती,
कहे कहे सब बात टूटती,
एक अगाध अनन्त कहानी,
शब्दों मे वह कहां सिमटती।
यदि समपूरन बानी पाऊँ ?

मौन रहूँ तो कांटे छिदते,
जो बोलूं तो प्राण हरकते,
हाव-भाव कुछ कह भी डाले,
सुनने वाले नही समझते।
कैसे वाचातीत सुनाऊँ ?

खीच खीच कर चित्र अधूरे,
कितने अलभ रतन चकचूरे,
लिख लिख कर औ' कह कह कर तो
किए अहं ही अपने पूरे।
कैसे यह अपराध छिपाऊँ ?

हां यदि तुम को मिल जाए वह
महाबोध अस्पर्श्य, अदेखा,
और मुझे भी मिल जाए वह
ज्योतित अतर्ज्ञान अनोखा,
तो मैं कुछ संकेत धराऊँ।

# रस बरसे

सखि अब रस बरसै मैं भीजूं।
भीतर बरसै बाहर बरसै दिन बरसै भर राती,
प्रेम लगन की झडी लगी है रुकती नहिं न सिराती
जाने किस तरंग पर घर की वस्तु-वस्तु लहराती,
द्रव तो वहं सभी कोई जानै अद्रव वही सब जाती।
जड मुझ मे सीझा मैं जड मे तनिक-तनिक कर सीझूं।

अब तो जलै मनो धर बाहर सारे सग, संघाती,
जब जड ऊर्जा रूप उघारै जगती मस बन जाती,
धूल मैल सब भस्म हो रहे काया निखरी आती,
स्थूल, सूक्ष्म का भेद मिट गया गिरी भीतियां जाती।
अमर तत्त्व बन गया सभी कुछ मैं न तनिक अब छीजूं।

अगारो की सेज बिछाकर है अभिसार रचाया,
उस अविकामी और अभोगी को तब कंठ लगाया,
अंगारे अब फूल बन गए अजर अमर यह काया,
जमन-जनम के घाव भर गए अग अग मुसकाया।
अपने ही नव राग रग पर वार वार मैं रीझूं।

उस अदृष्ट की सुन्दरता पर ही मन आज ठगाया,
मेरे प्राण-राग ने उसको है साकार बनाया,
वस्तु वस्तु मे भिन्न रूप से है उस को ही पाया,
अब जग लगता भूली भटकी-सी अपनी ही छाया,
अपने पर तो मोह बहुत है फिर किस पर मैं खीझूं।

## रसधर

बरसो मेरे रसधर बरसो।
एक लहर बरसो जड़ता पर
आदि आदि के ताले टूटे
जडता से लेकर आत्मा तक
छिपे सूर्य की किरणे फूटे।

एक लहर आत्मा पर बरसो
टूटे यंत्र-दासता सारी,
मन, प्राणो की विकचन विहँसन
बीच खिल उठे प्रभु-फुलवारी।

एक लहर बरसो पृथ्वीपर,
ध्येय विहीन अभागी क्षणभर
पुनः खडी हो जीवन-सम्मुख
अपने मूल प्रश्न को लेकर।

एक लहर बरसो विचार पर
कि वह अनन्त उडान भर सके,
लाए उतार वह प्रकाश जो
विचार-युद्ध समाप्त कर सके।

एक लहर अंतर पर बरसो
शाश्वत एक दृष्टि खुल जाए,
देश-काल की सीमा टूटे
स्रष्टा, सृष्टि एक हो जाए।

एक लहर बरसो मानव पर
स्व-अहंता का मर्म खुल सके,
व्यक्ति-धर्म के भीतर अपने
अंत:प्रभु को मूर्त कर सके।

एक लहर धर्मों पर बरसो
उनके सब विरोध बह जाए
परम सत्य मे सभी आ मिले
सब सब के पूरक बन जाएं।

## वे पद

मैं केवल चरणों की दासी।

पद-धूलि बन गई अंगराग
जो चिर सुगन्धि से भर जाती,
अनुकम्पा है शाश्वत सुहाग
जो कृपा-लाली सरसाती,
मैं बार बार वे पद छूने
बस जनम-जनम से हूँ आती,
निर्वाण यही है, मुक्ति यही,
मेरा काबा मेरी काशी।

मैं खोजूं उसको, इसीलिए
वह अद्भुत नीचे है उतरा,
मेरे हित ही रूपायित बन
मन मोहन ने है रूप धरा,
इन प्रेमी नेत्रों के सम्मुख
बरबस है यह रहस्य उघरा,
उन शिव चरणों को धर लेती
मैं हहर हहर कर गंगा-सी।

सारी सुन्दरता उधर-उधर
मुझ को यह भेद बताती है
यह जग उस की ही काया है
संकेत मधुर दे जाती है,
सारी कुरूपता उस को खो
कर मन ही मन अकुलाती है,
मैंने तो उसको ढूंढ लिया
छा गई शान्ति इक अविनाशी।

# अंध पुजारी

मैं चरणों की अंध पुजारी।

काम कुबेर खड़े हैं सम्मुख
पर हिय की कैसी लाचारी,
नयनों ने उठ छवि न निहारी!
मैं चरणों की अंध पुजारी!

कीर्ति खड़ी है भीड़ लगाकर,
ज्ञान फिर गया है ललचाकर,
लौट गये हेती हितकारी।
मैं चरणों की अंध पुजारी।

जितने प्रश्न पड़े थे उलझे
इन चरणों में आ सब सुलझे,
जाता सब जीवन बलिहारी।
मैं चरणों की अंध पुजारी।

# विरोधाभास

मेरा मन चरणों में लाग रहा।
कैसे कह दू स्वाद झूठ है
झूठे पड्रस भोजन
उसी झूठ से मोल चुकाकर
प्रेम-मधुकरी माग रहा।

कैसे कह दू भोग झूठ है
झूठी सकल वासना,
जिसकी सबल कोख में अब तक
पलता चिर अनुराग रहा।

कैसे कह दूं स्नेह झूठ है,
झूठी ममता, माया,
सौ सौ बंधन में बंधकर भी
यह मन दिन दिन जाग रहा।

कैसे कह दूं ज्ञान झूठ है
औ' कल्पना उड़ानें,
जिन पर उड वह सत्य लोक का
लेता एक सुराग रहा।

कैसे कह दू कला झूठ है
झूठी भाव-हिलोरे,
मन सौन्दर्य-सिन्धु में गोते
ले छिछलापन त्याग रहा।

कैसे सब विज्ञान ज्ञान है,
केवल भौतिक खोजें,
वह अनन्तता में दृढ़ता से
लेता नवल छलाग रहा।

कैसे कह दूं अहं व्यर्थ था
जग को नर्क बनाया,
किंतु नर्क से होकर बढ़ता
सतत स्वर्ग का मार्ग रहा।

कैसे कह दूं दुख अनपेक्षित
इस अज्ञता-राज्य में,
दुख की घन चोटों से धीरे-
धीरे मम तम भाग रहा।

कैसे कह दूं मोक्ष सत्य है
जीवन झूठी माया,
जीवन में ही अब तक प्रभु से
खेला जाता फाग रहा।

यह विकास गति प्रेम-अग्नि है,
जग में पुरुष-प्रकृति की
उसी अग्नि के सँग जीवन में
जलता प्रकृति-सुहाग रहा।

## तन-मधुवन

बाजै मुरलिया तन-मधुवन में !
एक गूंज गूंजी मानस में
द्वार खुले कंचन के,
उतर पड़ी इक ज्योति हहरती,
अंधे ज्ञान-सदन में।

एक गूंज गूंजी अंतर में,
बुझे दीप सब हुए प्रकाशित
प्रकटी मंदिर में इक मूरत
सब शिर नत वन्दन में।

एक गूंज गुंजरित कंठ में
स्वर फूटे अमृत के,
सामगान की टेक भर उठी
जगती के क्रन्दन में।

एक गूंज गूंजी आत्मा में
द्वार खुले चन्दन के,
देह, प्राण, मन पूर्ण सुगन्धित
जीवन के नन्दन में।

## अमर रस

हृद्-गुफा से रस अमर झरे।
काले गोरे सुन्दर और असुन्दर भी,
बरबस ही ये देव व असुर निशाचर भी,
इक दिन उस से जाते सहज धरे।

पूछे, बिन पूछे, वह फोड दिवार बहे,
जग के कोलाहल से वह बिन तनिक डरे,
जहरीले हृदयो मे अमृत भरे।

अहमों की होडो मे उसकी कौन सुने,
और झुठ-दौडो में उसको कौन गिने,
उस बिन कोई न अमर विजय वरे।

शासन के हित अनगिन शीश कटे,
व्यर्थ घृणा से सब के हृदय पटे,
किन्तु घृणा को वह निज यत्र करे।

# तादात्म्य

मैं तो तेरे ही रँग राती
चाहे जितना कोई नीचे फिर फिर क्यों न झुकाए,
झपके और कँपे विन तम में अपना शीश उठाए,
नीरवता में इक टक जलती मैं दीपक की वाती।

वन से, घाटी से, कुजों से, सतत विना विल्माए,
जीवन के सब बुरे-भले को अपने कंठ लगाए,
पुष्प-गंध मम भू से उठकर ऊपर ऊपर जाती।

तर्क वितर्कहीन बालक मी सब अर्पित करवाए,
चितामुक्त बनी-सी चरणों पर सब कुछ अरघाए,
तेरे ही इंगित पर पगगति चलती है पतियाती।

जनम सके बस तेरी इच्छा भू के अतर्मन मे,
प्रेम हो सके विकसित तेरा जगती के उपवन मे,
सब कुछ बटोर आती तुझमें सरिता सम उमगाती।

एक शाति अब उतर रही है जल, थल और गगन मे,
एक प्रभा फूटी पडती है इस मिट्टी के रँग में,
इन्द्रिय सीमाएं निज अनंतता को छू छू आती।

# तन-धाम

यहा आकर अब करो निवास।
सब रँग मिलकर एक बन गए
निश्चल, अटल अकाम,
यहा पडा है इन नयनो का
विपुल शून्य आकाश।

ऐसा हुआ आज कोलाहल
गली गली का शात,
मानो उर अतर प्रकोष्ठ मे
नही किसी का वास।

अत हुई अब सकल प्रतीक्षा
अंत हुई सब आस,
कितना सुस्थिर और अचचल
है मेरा निश्वास।

जीवन का हय चला जा रहा
निर्भय औ' निर्द्वंद्व
तुम्ही सँभालो छोड चुका है
मन अब उसकी रास।

## सायुज्य

अब तो लागत मिलनहुँ भारी।
सुधि करि करि मनौ टूटल, जुरत
सुछवि वह अनन्तचारी,
सोवत, जागत याही से अब
छिन इक जात न टारी।

अब पलकन सँग खुलन मुदन नहिं
चाहत दीठि हमारी,
मदा मिली ही रहन चहत हैं
होन न चाहत न्यारी।

यह तन निवसन चाहत अब तो
पल छिन गोद तुम्हारी
कर न परस हित करत एही से
उठिवे की तैयारी।

ख्याल परे अलगत्व भावना
हृदय देत दुख भारी,
अब तो मन नहिं सोचन चाहत
रहमिहुँ बात तुम्हारी।

८

नीरव-मन्दिर के वासी, कैसे हम उन्हे बुलाए?
जब मृत्यु और पीड़ा के
गढ विजय पताका फहरे,
भू की पायल गुंजन पर
जब चित न तनिक यह लहरे,
रे चंचल मन जब तेरे सर्वांग ध्यान लग जाए।
तब तो हम उन्हे बुलाएं।

पथ में बिछवाए आंचल
बिन हिले नही रह पाते,
उर की आशा धड़कन से
वे कोमल पग छिल जाते,
आशा-शिशुओ को समता-गोदी में प्राण सुलाएं।
तब तो हम उन्हे बुलाए।

जड़ चेतन आंख मिलाकर
अपना रहस्य जब खोले,
जब पाप-पुण्य ऋत-अनृत
इक दैवी भाषा बोलें,
जब वस्तु वस्तु मे उनकी ही भिन्न अदा लख पाएं।
तब तो हम उन्हे बुलाए।

जब असुर-देव दोनो ही
उनके सुयत्र बन जाए,
जब रात और दिन दोनो
अपने को बदला पाए,
सब मार्ग दिव्य बन जाएं, वे ही वे आएं जाएं।
तब तो हम उन्हें बुलाएं।

यह रक्त उन्ही के तन का
मधुरिम संचार बने जब,
उनके अंतर की धडकन
मेरा उर सदा सुने जब,
फिर आंख मूदकर नाहक हम किसका ध्यान लगाएं।
हम क्यो फिर उन्हे बुलाएं।

## कामना

यही कामना आज हमारी
तेरी इच्छा पूरी हो।

जो कुछ तू ने वचन दिया था,
वह कण-कण में पूरा हो,
और प्रकृति का कोई भी पग
अधा हो न अधूरा हो।

तम मे फिर गिरने की उसको
कही न कुछ मजबूरी हो।

हम अंतिमतम खतरो तक में
बस सीधे बढ़ते जाए,
उनके पीछे छिपी विजय को
और खोलकर प्रकटाएँ।

हमें शक्ति दो चिर योद्धा की
जो हारे न अधूरी हो।

किसी ध्येय में, अरे कभी भी,
अर्थ हमे ललचा न सके,
तेरा सेवा-व्रत सम्मुख हो,
कीर्ति हमें उकसा न सके।

सभी कार्य का अरे हमारे
आनँद एक मजूरी हो।

सत्ता की उन्नत उँचाइयो
और क्षुद्रतम कोपो में,
औ' उनकी प्रत्येक चाल मे
औ' प्रत्येक भंगियो में।

जीवन के प्रत्येक मोड पर
तेरी विजय जरूरी हो।

यही कामना आज हमारी
तेरी इच्छा पूरी-हो
बस तेरी इच्छा पूरी हो।

## आस्पृहा

पूर्ण करो जननी बस एक कामना।
एक कामना।

रह न जाय अपनी अभिलाषा का लेश,
हो जाए अह जनित इच्छा सब शेष,
फिर भी दिन-रात रहूँ सतत कर्मलीन,
चले सकल कर्म एक ताल के अधीन,
मेरी ही बने प्रकृति-आत्म-अर्पणा।
आत्म-अर्पणा।

अपनी लघु दुर्बल भुज वल्लरियों बीच,
भर लूं मैं सकल आर्त जगती को खींच,
दे सकूं नितान्त अभय जीवन की आश,
प्रेम में तुम्हारे मैं भर सकूं विश्वास,
तृप्त करो मेरी बस यही वासना।
यही वासना।

शीश उठा चल पड़े हैं जिधर शिखर वृन्द,
झूम रही अर्चनरत डालों के झुण्ड,
पशुओं की चपल शक्ति भटकती निगूढ,
मानव का प्रेम, घृणा रहे जिसे ढूंढ,
सुनूं धरा-अन्तर की तीव्र प्रार्थना।
तीव्र प्रार्थना।

## माघ

प्रभु मुझ को अब निज कर धर पाने दो।
मेरे सभी विचारो औ' भावों को,
मेरे सकल्पों औ' आदर्शों को,
मेरे रोग, दोप औ' इच्छाओं को,
मेरी भूख, प्यास औ' आवेगों को,
मेरी बाहर-भीतर की सत्ता को अपने भीतर डूब कर समाने दो।

फिर पथ पर कितनी बाधाए आएं,
और निराशाएं निज रोक लगाएं,
मुझे नही सदेह, भीति कुछ होगी,
मेरी गति न कही भी रुद्ध बनेगी,
अपनी इच्छाओ, आशाओं को ही बन अब मेरा सुसंकल्प जाने दो।

दुख की श्वास न शासन कर पाएगी,
काली छटा नही फिर घिर पाएगी,
नीरसता जीवन को डस न सकेगी,
विह्वलता अंतर को कस न सकेगी,
बस इन नाना रूपी आकारों में, एक बार निज आनन दिख जाने दो।

चिन्ता नही कि चारों दिशि से आकर,
जग पर दुख के बादल उमड़ रहे है,
और प्रगति के पथ पर पग पग पर ही
घृणा द्वेप विषधर फुफकार रहे हैं,
अपने चरणों को द्रवकर अब मेरे विनत शीश पर मधुरस बरसाने दो।

## ईश-कृपा

प्रभु जिसके रक्षक हों उसको कौन डिगा सकता है?
कीर्ति और धन, वैभव अपनी
जगमग छवि दिखलाकर,
ज्ञान और पाण्डित्य, कल्पना-
गरिमा मे फुसलाकर,
ध्येयनिष्ठ एकाकी पथ पर कौन डरा सकता है?

उठा आँधिया उसे सुरक्षा
मे पहुँचा सकती है,
गला अग्निया उसको सोने
सम निखार सकती हैं,
उसके दृढ़ निश्चय मे उसको कौन हटा सकता है?

मानव-प्रेम उसे बाहों में,
नही बाध सकता है,
औ' चरणो मे मोह नही
बेडिया डाल सकता है,
कर्तव्यो का भार न उसको वृद्ध बना सकता है?

हे परोपकारी, अभिमानी,
ज्ञानी औ' दानी रे,
उठा न है यदि ईश-कृपा का
हाथ शीश पर तेरे,
तो जग भूल-भुलैया से फिर कौन बचा सकता है?

# मुक्ति

मुझको मेरी मुक्ति मिल गई है।
तेरे इंगित ही अब मेरे बने कर्म की धारा,
तेरी इच्छा ही पगगति का मेरी बनी इशारा,
औ' मेरे बंधन-बंधन की ग्रन्थि खुल गई है।

अंतरतम के तल से यथा किसी ने मुझे पुकारा,
वस्तु-वस्तु ने यथा तुम्हारा ही बस रूप उधारा,
मुझे साथ ही कर्म, ज्ञान औ' भक्ति मिल गई है।

दुनिया के बल आकर मुझ को डिगा नहीं अब पाते,
रुककर मेरे अन्तर में उलटे फिर नव जनमाते,
मुझको मेरी एक अचंचल शक्ति मिल गई है।

परम शांति का और एक साम्राज्य बिछ गया है,
तेरी पूर्ण विजय पर औ' विश्वास जम गया है,
मुझे अमर बन मेरी जग-अनुरक्ति मिल गई है।

अक्षय प्रेम-लहर इक हरहर बहती क्षण-क्षण है,
मैं न जानती मैं हूँ, तुम हो या जग-जीवन है,
जीवन् स्रोत खुल पड़े जग की भुक्ति खिल गई है।

मेरा तो मखि अंग-अंग डूबा तुम भी डूबो हे!
देश और देशांतर डूबो, डूबो जन-जन हे!
आओ देखो आज तुम्हारी तृप्ति मिल गई है।

## कब मिल जाए

कब किसका ईश्वर मिल जाए।
मानव-अंतर कलिका ही है
जो प्रतिपल खिलनेको आतुर,
किन किरणों को छू जाने कब
किसका अवगुण्ठन खुल जाए।

सबकी अपनी अपनी रुचि है
किसका हृदय कहां रम जाए,
सुन्दरता घूंघट-पट डाले
किसकी दीठि कहा गड जाए।

किसे कहूँ अल्पज्ञ, अपढ मैं
किसे विज्ञ, विद्वान् बता दू,
किस घटना का इंगित पहले
किसका समाधान बन जाए।

किस पथ को मैं कहूँ पतिततर
किस पथ को ग्रहणीय बता दू,
परम मार्गका सिगनल वह ही
जिसका प्रश्न जहा लग जाए।

---

यह कविता मैंने ४० वर्ष पूर्व लिखी होगी जब एक नए जीवन दर्शनके प्राप्त करनेकी ललक जाग चुकी थी। क्या इसे श्रीअरविंद आश्रममें प्रयाणकी एक निश्चित पूर्व तैयारी नही माना जा सकता?

किसे कहूँ आराध्य अनवरत
किसे निपट पाषाण बता दूं,
वह ही उसका मंदिर मसजिद
जिसका शीश जहां झुक जाए।

सबकी अपनी दिशा भिन्न हैं
किसे प्रकाश कहा मिल जाए,
कौन ज्ञान का पूरब पच्छिम
जिसका सूर्य जहा उग आए।

वेद न जाने शास्त्र न बूझे,
फिर भी प्राणी बढा जा रहा,
अरे मुक्ति का द्वार वही है
जिसका अहं जहां चुक जाए।

# स्पर्श

मुझको तेरी अस्ति छू गई है।
अब न भार से विथकित होती हूँ,
अब न ताप मे विगलित होती हूँ,
अब न शाप से विचलित होती हूँ,
अब न पाप मे अपकृत होती हूँ,
सब कुछ को भुज में भर लेने वाली
नवल प्रीति की रीति मिल गई है।

मुझे निराशा दबा न पाती है,
मुझे उदासी उबा न पाती है,
मुझे अधेरा डरा न पाता है,
और मृत्यु भी रुला न पाती है,
सबके पीछे पुण्य उपस्थिति की
अद्भुत महिमा प्रकट हो गई है।

धर्मो और नीतियो के रण मे,
वादो, कलहो के संघर्पण में
मेरी शाति न भंजित होती है,
मेरी काति न धूमिल पडती है,
सकल भिन्नता तेरी सुपमा की
अलग-अलग इक अदा बन गई है।

वैर विरोधो से इक लय कढती,
विपर्ययो में प्रेम-रार सुनती,
अंधकार मे भी ऊषा जैसी,
तेरी स्मिति की छटा खिली पडती,
औ' यह दृग में डूबी सब जगती,
लुका-छिपी का खेल बन गई है।

सवर अव्यवस्था सब जाएगी,
सारी कर्कशता मिट जाएगी,
स्वर्ग उतर जगती में आएगा,
सुसौन्दर्य जीवन में छाएगा,
क्योंकि प्रकट होने को धरती पर
तेरी सत्ता विवश हो गई है।

## एक इशारा

एक इशारे पर अब मेरी जीवन गति चलती है।
मैं न जानती मेरे कर क्या सभव कर डालेगे,
मैं न जानती मेरे पग क्या आज खोज लायेगे,
मेरी पायल में सुदूर की कोई ध्वनि बजती है।

मेरे कार्यों की गति आज सौगुनी सी लगती है,
अतर मे रागो की गगा हर हर हर बहती है,
जिसे न कोई पकिलता अब मैला कर सकती है।

उठा लिया बल भर कर मेरे 'मैं' को आज किसी ने,
मेरे पूर्ण अपनपौ पर कस ली है रास किसी ने
क्या बतलाऊँ भाग्य-रेख फिर कब, कैसे लिखती है।

चित्र खीच कैसे बतलाऊँ अपनी तुम्हे कामना,
इन जग-तोलो से मत तोलो मेरी अरे भावना,
इक अदृष्ट सकल्प-अग्नि इन श्वासो में जलती है।

शेष कहानी रही न जो थी सब का बनी तमाशा,
मुझ में मेरी बात नही अब और न मेरी भाषा,
कोई बोल रहा है जैसे और कलम चलती है।

# एक ही आधार

एक ही अधार मेरे एक ही अधार।
स्वागत में खुले पड़े स्वर्गों के द्वार,
बाह उठा मौन खड़े इधर मधुर प्यार,
मेरे दृढ़ निश्चयों की आखिरी पुकार—
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

एक एक रेशमी पटों को चीरकर,
चढ़ कर इक एक अविश्वास गढ़ों पर,
कर रही हूँ यह गुहार और एक बार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

छिपी नहीं रह गई है फैल गई बात,
तन, मन में आज मेरे ही स्वभावजात,
उमड़ पड़ी तेरी अमर ज्योति की इक धार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

अहम् के सुराजों के मानी सम्राट्,
कर चुके हैं सकल अपनी अर्पणा विराट्,
हो रहे तैयार बचे गुप्त अहंकार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

एक एक कर्म स्रोत की विशुद्ध धार,
एक एक जीवन है सरिता साकार,
सिंधु! एक एक सरित् तेरा ही सिंगार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

लाल दीठि, लाल जगत्, लाल करनहार,
लाल पाप, लाल पुण्य, लाल सृजनहार,
आज सकल दृष्टि मुझे हो उठी रतनार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

छूट गए रंग रूप, परख की अनुहार,
टूट गए कार्य और कारण के तार,
एक अमर ज्योति और अनगिन अधार।
एक ही अधार मेरे एक ही अधार।

# भारत भक्ति

# जागो

भारत हे जागो।
हे प्रकाश के देश,
आत्मज्ञान निःशेष,
अब निद्रा त्यागो!
द्विविधाग्रस्त बने तामस क्षण मे,
विकृत, विभक्त बने निज जीवन में,
व्यक्ति अहं की सीमा को तोडो,
विश्व प्रेम ले अंतर पर छाओ!
हे द्रष्टा जागो।

इस मन के अंधे सचालन में
स्वार्थों के असुरक्षित शासन मे,
अभय मत्र का इक गुजार करो,
एक नई श्रुति के गायन गाओ।
हे श्रोता जागो।

अतीत-गौरव श्वास नही भरता,
वर्तमान है लाशो पर चलता,
तुम ऊषा की किरण फोड निकलो,
नव ऋषि के भविष्य को निरमाओ!
हे स्रष्टा जागो।

महानिरकुशता मे अब कूदो,
सकल चक्र की गति उलटी कर दो,
जारी एक नया फरमान करो,
मृतकों में भी नव जीवन लाओ!
अनुमन्ता जागो!

पूरब पश्चिम मेरे ही भुज हैं,
दक्षिण उत्तर पद औ' मस्तक हैं,
छिन्न अंग सब लेकर युक्त करो,
रक्त चाप में यौवन भर जाओ!
हे भर्ता जागो!

स्वयं प्राण मन कुंठा से उबरें,
अपनी ही किरणों में जग, निखरें,
प्रकृति-पुरुष का सब विलगाव हरो,
दिव्य भोग का आनन्द चखाओ।
हे भोक्ता जागो।

## वन्दे मातरम्*

भारत माता तुम्हे प्रणाम ।
अपनी चल-जल धाराओ से हे श्री-शोभित !
फलपद्म घन-उद्यानो मे आभा मंडित,
आनन्दोर्मिल पवनो से अपनी चिर शीतल,
पुलकित, प्रमुदित, कंपित वन-शस्यो से श्यामल ।

दोल्ति तरु शाखाओ औ' रजतिम शिखरो पर
चन्द्रप्रभा के सपनो की महिमा वाणीतर,
विचित्राभ मुकुलित वन-वैभव से आभूषित,
हम इन मंगलमय सरसिज चरणो पर आश्रित,
हे मृदुहासिनि, हे मितभाषिणि, भारत माता तुम्हें प्रणाम ।

चमके जब तलवारे अस्सी कोटि करो मे,
गूज उठें हुंकारे अस्सी कोटि उरों में,
कौन तुम्हें कहता तब दीना और मलीना,
कौन तुम्हे कहता हैं अकर्मण्य बलहीना ?

पूरब-पश्चिम उत्तर-दक्खिन, छोर-छोरतक
देश-देश में दारुण नाम तुम्हारा व्यापक,
महती दीर्घ-सचिता सुशक्तियों की स्वामिनि
हम पुकारते तुमको मा, राज्ञी, वरदायिनि,
परम रक्षिके, परम पालिके, भारत माता तुम्हे प्रणाम ।

जिसने दिया न कभी डालने अरि को डेरा,
जल की थल की सीमाओ से सदा खदेरा,
फिर-फिर कर ली अपनी भूमि स्वतंत्र दुलारी,
उसके चरणो मे अर्पित सब प्रगति हमारी ।

अरे तुम्हीं हो प्रज्ञा, नियम-विधान तुम्हीं हो,
तुम्हीं हृदय औ' आत्मा जग की प्राण तुम्हीं हो,
यम पर भी जय पानेवाली हृदयशक्ति हो
दिव्य प्रेम हो और हृदय की दिव्य भक्ति हो
काल-अर्गला, प्रीति विह्वला, भारत माता तुम्हें प्रणाम।

तुम्हीं हाथ की नाड़ी और नसों का बल हो,
तुम माथे का चंदन, आंखों का काजल हो,
और तुम्हीं आकर्षण, सुन्दरता केवल हो,
काया की सुख-शय्या, आत्मनिलय प्राजल हो।

जनम-जनम के मेरे पातक को गंगाजल,
मेरी सब कायरता हिल गीतामृत उज्ज्वल,
मन्दिर की सारी दिव्य मूर्तियों में अविचल,
मिलती एक तुम्हारी ही झांकी है झलमल।
हे देवज्ञा, हे मंत्रज्ञा, भारत माता तुम्हें प्रणाम।

तुम दुर्गा हो, कुलांगना हो, सबकी रानी,
शत्रु-नाशिनी और क्रांति की खड्ग वाहिनी,
और तुम्हीं कमलासीना माता लक्ष्मी हो,
औ' सहस्र स्वर-लहरी जननी सरस्वती हो।

दूर्वादल-श्यामलतन शोभे अतुलनीय हो,
आत्मा की अमला आभे तुम अद्वितीय हो,
दो हमको अब जननी अपनी पावन श्रुति दो,
दो हमको जननी अपनी निस्सीमा धृति दो।
हे शुद्धा, शुभ्रा, परिपूर्णा, भारत माता तुम्हें प्रणाम।

अपनी चल-जल धाराओं से हे श्री-शोभित,
फलापन्न घन-उद्यानों से आभा मंडित,
अरण्यकेशी, मरकतवेशी किरण झलमिल
उन्नतभाल हिमालय आत्म-प्रभा में ज्योतित।

संस्कृति का कण कण है जिसकी स्मिति से दीपित,
जन-जन का अन्तर जिसकी ममता से प्रमुदित,
औ' समुद्र धोता है जिसके चरण-कमल नित,
सेवा में अस्सी करोड़ है सदा उपस्थित,
हे महीयसी, हे गरीयसी, भारत माता तुम्हे प्रणाम ।

दोनों हाथों अर्थ, अन्न बरसाने वाली,
औ' वाणी से प्रेम सुधा सरसाने वाली,
सब देशों से प्यारी हमको सबसे न्यारी,
परम माधुरी परम सुन्दरी जगत् दुलारी ।
हे अभिरामा, विद्युद्दामा, जनम जनम के तुम्हे प्रणाम ।

## जागरणी वेला

आ पहुची जागरणी वेला ।
जल में, थल में और गगन में,
मानव, पक्षी, पशु जीवन में,
देश देश में जाति जाति मे,
शिक्षा कला और सस्कृति मे
जो न अभी तक मुखर बन सका गूज उठा वह स्वर अलबेला ।

व्यक्ति-मोक्ष-इच्छा आ पहुची
अब सामूहिक एक दौर में,
व्यक्ति-चेतना को बनना है
विश्व केन्द्र निज आत्म-ठौर में,
विश्व शक्ति का यत्र व्यक्ति यह कर सकता न और अवहेला ।

मन को निज धुर शिखर अपेक्षित,
अतर को अंतिम गहराई,
और इन्द्रियों को आत्मा की
अन्तहीन सुविशाल सिताई,
जिससे साध सके तन, मन वह प्रकाश जो जा रहा उंडेला ।

भेद भाव अवरोध हटा कर
खोल सके सीधे अंतर को,
मानव अपने उस प्रकाश प्रति
अर्पित कर सब कर्म-निकर को,
तो सब जीवन व्यापारों में छाए नव चेतना-उजेला ।

नाना आदर्शों को साधे
विविध विधाओं में जो खिलता,
मृदु छाया प्रकाश रंगो में
एक ज्योति बन सदा विकसित
व्यक्ति करेगा सबल नियत्रित सकल शक्तियों का यह मेला ।

सब शक्तिया विरोधी उसके
पथ की शायद बाधा होगी,
दिव्य शक्तिया उसे बराबर
अपनी सहायता अरपेंगी
सत्य पक्ष में खडा वीर इक, उसे न समझो कभी अकेला ।

अब अपने को रीता कर दो
कुंठित भावो को समेट लो,
और अह की दीवारो को
ढह जाने के लिए छोड दो,
तुम न करो कुछ इच्छा अपनी प्रभु का खेल जा रहा खेला ।

# महा बलिदान और देव-जागरण

देख रहा हूं दूरदृष्टि से
देव-जागरण होने वाला।
अन्तिम आहुति हुई समर्पित
भारत मां की प्रेम क्रोड में,
अंधकार का गर्त भर गया
बलिदानों की लगी होड में,
लखो पूर्व में नई किरण का
एक उदय है होने वाला।

देखो खुद चंडी ने आकर
जग-विषघट का पान कर लिया
खुद पापों ने शिव-त्रिशूल का
बनना अब स्वीकार कर लिया,
छिपा आसुरिक बल अब शिव से
खुद ललकारा जाने वाला।

नहीं रहा अस्तित्व पाप का
अब वह केवल भटक रहा है,
शिव में परिवर्तित होने को
या लज्जा में अटक रहा है,
प्रायश्चित्त उषा में है जग
नव युग शंख फूंकनेवाला।

दर्प को बदल डालो बल में
और अहं को विशालता में
घृणा और ईर्ष्या को बदलो
सत्य, शिवं औ' सुन्दरता में,
दिखला दो इस पंचभूत में
है देवत्व जनमने वाला।

मानवता में व्याप्त हो चुका
बीज एकता के प्रकाश का,
विश्व-ज्ञान ने रद्द कर दिया
ढोंग धर्म के अहंभाव का,
बन्दूकों तलवारों से क्या
अमर सत्य यह मरने वाला ?

कमर युद्ध की टूट गयी है
महायुद्ध की रीति नीति की
विश्वप्रकृति ने तज पशुता की
ली साध ली राम प्रीति की,
बर्बरता का ढंग पुराना
अधिक नहीं है टिकनेवाला।

मानव प्रेम परखने वाली
नव जाति का अभ्युदय होगा,
अंतर कथा समझने वाली
इक भाषा मानव बोलेगा,
सब धर्मों के परे सत्य का
है इक मंदिर बननेवाला।

घृणा, क्रोध को त्याग अगर तुम
कहीं सत्य की आग जला लो,
सच को सच कह सकनेवाली
यदि अपने में शक्ति जगा लो,
युवा-हृदय मे परम एकता
को है कौन डिगाने वाला।

जिसके हित सब मरते आए
वही असंभव संभव होगा
बहुता में एकता का चरम
सत्य सुनहला मूर्तित होगा,
मानव-[illegible] द्वार खुल पड़ा
है चितचाहा होनेवाला।

यही समय है थोड़े तप से
कार्य महत्तर कर सकते हो,
इस भागवत घड़ी में सुगहज
ऊंचे ऊंचे चढ़ सकते हो,
पीछे शीश पटक कर भी तो
तुम्हें न यह फल मिलनेवाला।

कूद पड़ो तुम बाहर अपने
इन कुंठित सीमा-बाड़ों से,
चूक गए यदि तुम अपनी ही
दुर्बलता के अटकावों में
तो सब मिलने का अवसर पा
है सब कुछ लुट जानेवाला।

विघटनकारी महा शक्तियों
ने जग को निज खेल बनाया,
उन पर जय पाने का साहस
नही किसी ने अबतक पाया,
जग-पापों का अंत फकत है
भारत में ही होनेवाला।

क्योंकि घृणा से नही प्रेम से
बस उन पर जय पानी होगी,
मा काली का रौद्र प्रेम ही
उसकी उचित प्रणाली होगी,
भारत का यह आत्म-तेज ही
है जग मंगल करनेवाला।

घड़ी परीक्षा की है भीषण
है दो टूक फैसला करना,
जाति, धर्म का भेद भुला कर
है आत्मा का प्रेम सँवरना,
या तो करो चुनाव स्वर्ग का
या कि नर्क है खुलने वाला।

उठो जगत् गुरुओ, तपस्वियो
लगीं दृष्टियां सारी तुम पर,
द्विविधाग्रस्त जगत् को अपनी
दो अब ज्ञात दृष्टि उज्ज्वलतर,
आज बदल दो जग-मूल्यों को
मनु, मिश्र है बननेवाला।

चौंका दो जगती को अपने
आकस्मिक उर परिवर्तन से,
नभ में फूटे ज्योति धार इक
अब तक ढके हुए पूषण से,
जीवन में इक चमत्कार नव
यहां प्रतिष्ठित होनेवाला।

## नव श्रृंगार

आज रात शृंगार करूंगी।
जाऊँगी मैं मलय शिखर पर
श्वासो से समीर पी लेने,
बालो को सुरभित कर लेने
दृग मे नभ-गरिमा भर लेने
खिले फूल सा यौवन लेकर
शूलो के वन पार करूंगी।

आज जल उठा एकाकीपन
तोडो मेरी कारा तोड़ो,
घाव बन गया यह दुराव अब
खोलो मेरे बंधन खोलो,
धर्म राष्ट्र की भित्ति तोडकर
मैं जीवन को प्यार करूंगी।

छला गया है जीवन अब तक
तुच्छ कामना-व्यापारों से,
वणिक हाट मे ठगा गया है
और अहं के बटमारों से,
शुद्ध स्नेह की हाट लगाकर
मैं निर्धन व्यापार करूंगी।

दिव्य सँदेसा गूज रहा है
मानव जिसे न सुन पाता है,
देवो की हड़कन होती है
फिर भी नींद न तज पाता है,
इक अनिल रागिनी छेडकर
अब सोना दुश्वार करूंगी।

दुर्बलताओं को दुलार कर
एक शक्ति का केंद्र रचूंगी,
पीडाओं का मौन सहन कर
इक तीखी तलवार गढ़ूंगी।
बहुत हुआ इन आत्म-वैरियो
का खुल कर संहार करूंगी।

## निमंत्रण

बन्धु तुम को है निमंत्रण।
लुट गया तम में सदन मम, कर न सकता अब प्रतीक्षा,
बोल हमला दिया तम पर, आज है मेरी परीक्षा,
कौन आता आज असुरों के छिपे सब गढ़ उल्टने।
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

मैं चला अब आंधियों के और प्रलयों के नगर में,
मोह की छाया तनिक पड़ने न देना इस डगर में,
कौन आता साथ मेरे गिरि-शिखर वन पार करने?
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

सह रहा हूँ घृणा, ईर्ष्या के विषम विष बाण कब से,
छुट गया है धैर्य मेरा, खुल गया केहरि पाश से,
खोल शिव सम वक्ष अपना, चल दिया सब शाप लेने।
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

चल दिया हूँ नाघता मैं नदी नाले औ' शिखर खर,
नांघता-गिरि-ढाल सीधे, और हिम-दलदली बंजर,
कौन आता मातृ अचल का सुलगता कलुष धोने।
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

क्षुद्र घर औ' नगर की सीमा मुझे कब रोक सकती?
और सुबकन या रुदन की ध्वनि न मुझ को टोक सकती?
मैं चला मा भारती के छिन्न अंगों को सँजोने।
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

मा कहे भारत मातु को है वही मेरा सहोदर,
विश्व भर के पीड़ितों पर लगी जिसकी दीठि कातर,
कौन करुणा-दृष्टि पर उस, औ' ले स्वर होम करने।
बन्धु तुमको है निमंत्रण।

चल दिया बस मैं अकेला, फकत नभ है जहा ऊपर,
और नीचे हिम प्रपाती विजडवाती महा ऊसर,
चल दिया मैं मातृ मुख पर मोद की इक झलक पाने।
बन्धु तुमको है निमत्रण।

कौन आता साथ मेरे छोड सब सीमा पुरानी,
देश, धर्मों, जातियों औ' प्रातरो की जड कहानी,
कौन आता रक्त से अपने नया इतिहास लिखने ?
बन्धु तुमको है निमत्रण।

इन क्षणों में युग-युगों का सहज स्वामी बन गया हूँ,
पहुँच कर मैं यहां जैसे मृत्यु को भी तिर गया हूँ,
कौन आता है क्षणो को अमरता से सीच देने ?
बन्धु तुमको है निमत्रण।

# गीताका मार्ग

ऋषियों के देश चल तू गीता के मार्ग पर,
गीता के मार्ग पर।

निज को पहचान आज जीवन योगाभ्यासी!
एक मुक्त-जीवन रच पूर्ण कर्म-संन्यासी!
त्याग कर निवृत्ति मार्ग सँवर उठ प्रवृत्ति-पर!
सँवर उठ प्रवृत्ति-पर।

प्रभु ने तो काया धर अमर पथ दिखा दिया,
जग का दुख धारण कर मनुज ऋण चुका दिया
जीवन को स्वर्ग बना प्रभु-ऋण तू पूर्ण कर?
प्रभु ऋण तू पूर्ण कर।

वासुदेव, वासुदेव एक मत्र जाप कर,
सभी नाम रूपो पर उसकी ही छाप धर,
भेद-भाव छोड़ कर जात-पांत को बिसर।
जात-पात को बिसर।

धारण जो करे हमें धर्म वह समर्थ है,
परम सत्य छोड़ अन्य मत्य-टेक व्यर्थ है,
स्वार्थों की जेल से तू धर्म को विमुक्त कर।
धर्म को विमुक्त कर।

सत्य अवतरण अवश्य एक अग्नि-पात है,
किन्तु नए सर्जन की यह तो शुरुआत है,
सहकर वह शक्तिपात सत्य को प्रतिष्ठित कर।
सत्य को प्रतिष्ठित कर।

सत्य और संस्कृति पर हमले जब होते हैं,
करुणा की ओट लिए सिंह कहीं सोते हैं?
रौद्र प्रेम-खड्ग लिए वीर अभय दान कर।
वीर अभय दान कर।

नवल सृष्टि सर्जन हित नाश में अधर्म कहा,
इंगित हो हरि का तब पाप कहा पुण्य कहा,
झंझा की गति से तू सकल भूत को विदर।
सकल भूत को विदर।

तुझको प्रभु-आज्ञा का पालन भर करना है,
प्रभु से जो शप्त पड़े उनका वध करना है,
अहं की विवशता पर निर्मम हो वार कर
निर्मम हो वार कर।

एक आत्म-ज्ञानी का मरना क्या जीना क्या?
जीवन के स्वामी का जीवन से बँधना क्या?
जीकर या मरकर तू पृथ्वी को मुक्त कर।
पृथ्वी को मुक्त कर।

अरे गरल पायी तू पीकर सब गरल आज,
करके सब अमृत तत्त्व बदल दे न धरा राज,
ओ द्रष्टा नवस्रष्टा फिर मन्त्रोच्चार कर।
फिर मंत्रोच्चार कर।

लग गई हैं होड़ आज धर्म औ' अधर्म मे
ठन गया है युद्ध यहा घृणा और प्रेम मे,
तीर सरिस बढ़ता चल विश्व कुरुक्षेत्र पर।
विश्व कुरुक्षेत्र पर।

सुन मत अब पीछे से आती आवाजों को,
हो न त्रस्त सम्मुख लख मृत्यु के जनाजों को,
जीवन औ' मृत्यु आज दोनों पर विजय वर।
दोनों पर विजय वर।

किसमें है शक्ति छुए तेरे औसान को,
किसमे है बल तोड़े आत्मा के ध्यान को,
कायमर्त्य, अरे अमर! ममादिष्ट चरण धर।
ममादिष्ट चरण धर।

सत्वगुणी अहकार ने तुझे विमोहित कर,
क्लैव्य मे गिराकर सब दैवी प्रज्ञा ली हर,
आत्म-शिखर पर चढ जा त्रिगुणो को मसल कर।
त्रिगुणो को मसल कर।

अपने सब ज्ञान और अपनी उन्नतियों को,
त्रिगुणों के वैभव से पूरित संस्कृतियों को,
उसी पर समर्पित कर, प्रकृति-यज्ञ पूर्ण कर।
प्रकृति-यज्ञ पूर्ण कर।

बनकर सब धर्मों औ' वादो का सुख-त्यागी
होकर तन्मना और तद्भक्त, तद्याजी,
उसकी ही शरण मांग उसी को प्रणाम कर।
उसी को प्रणाम कर।

# एक घोषणा

सुनो शक्तियो फूट डालने वाली,
तोड न सकती तुम संकल्प हमारा !
हम फ़ौलाद है कि जिसने गल गल कर,
है नित नव नव स्वरूप गढा, निखारा,
हम तपने गलने से कब डरते है।
हम तुम को आगाह किए देते है।

हम उन्नत ध्वज वाले इन धर्मों औ'
आदर्शों से भली भाति परिचित है,
जिनकी हठधर्मी ने पतित बनाया,
होते गए ध्येय मे अपने च्युत है,
अब न अंध कूपो मे गिर सकते है।
हम तुम को आगाह किए देते है।

अहं विनिर्मित इन काग़ज़ी घरो में
रहनेवालो ! अग्नि से न टकराओ,
ऊचे ऊचे तम के किले बनाकर,
तुम प्रकाश की चपेट में मत आओ,
सब मसूबे विनष्ट कर सकते है।
हम तुम को आगाह किए देते है।

चाहे बनकर वैरी छिपकर आओ,
और ध्वस्त होने की साध मिटाओ,
चाहे बनकर हेती सेंध लगाओ,
और परीक्षा सुशक्ति की ले जाओ,
हम सब कपट कुचक्र खोल सकते है।
हम तुमको आगाह किए देते है।

हम बन निश्चयबद्ध खड़े है पथ पर,
तुम्हे टूटना हो तो आगे आओ,
धारणा [illegible] अनश्वर करके आए,
तुमको मिटना हो तो युद्ध रचाओ।

पैर हमारे नहीं उखड़ सकते हैं।
हम तुमको आगाह किए देते हैं।

भारत का उत्थान नही यह केवल,
यह तो विश्वात्मा का अनावरण है,
ये सुधार अभियान नहीं है केवल
विश्वेच्छा की उगती प्रथम किरण है,
सारे तम का पीछा कर सकते हैं।
हम तुमको आगाह किए देते हैं।

जब तक भू पर सुख, साम्राज्य न छाए,
हमे चैन की सास नही लेना है,
जब तक दुख का अधिकार मिट न जाए
विश्रामो के बीच नहीं सोना है,
हम अनिद्र रह पथ पर बढ़ सकते हैं।
हम तुमको आगाह किए देते हैं।

भारत तो आत्मशक्ति है, जननी है,
लक्ष्मी है, दुर्गा है, सरस्वती है,
यही हमारा ध्रुव अत है, आदि है,
इससे रक्षित ही अपनी जगती है,
इस पर सर्व समर्पित हो सकते हैं।
हम तुमको आगाह किए देते हैं।

आओ मिलकर ऐक्य गीत अब गाओ,
किसी विभाजन की मत बात चलाओ,
विश्व ऐक्य वंशी मे राग मिलाओ,
शखध्वनि हो चुकी न देर लगाओ,
इस ध्वनि पर हम हंस हंस मर सकते हैं।
हम तुम को आगाह किए देते हैं।

आज हमारे पग में ऐसा बल है,
कि सब असंभव सभव कर सकते है,
आज दृष्टि मे ऐसा शुचि-दर्शन है,
मानव-वर्जित द्वार खोल सकते है,
जग भर का पथ-दर्शन कर सकते हैं।
हम तुमको आगाह किए देते हैं।

# वरदान

धूल धूसरित आर्य उठो हे,
निश्चय विजय तुम्हारी होगी।

यद्यपि प्रभु ने पूर्ण विजय का
हैं चुपके से वचन दे दिया,
किन्तु तुम्हें तो बलि शीशों की
अपनी अभी चढ़ानी होगी।

देश-मुक्ति का प्रश्न नही यह
विश्व-मुक्ति का महायुद्ध है,
विश्व-मातु के वीर पुत्र की
तुम को रीति निभानी होगी।

जीवन श्रम-श्लथ राहु-ग्रस्त यह
धरा तुम्हारी राह देखती,
देव-पुत्र हे मनुज-वृत्तिया
कर्दम मुक्त करानी होगी।

आदि शब्द उस जग-कारण की
अग्नि तुम्हे दहकानी होगी,
और अन्न के इस प्राणी मे
वाचा-शक्ति जगानी होगी।

मौन रहो पीछे मत देखो
आगे आगे बढ़ते जाओ,
अभी बहुत कुछ करना है इक
अतुलित शक्ति जुटानी होगी।

अपनी एक एक दुर्बलता
गला-गला फौलाद बनाकर,
उसमे अग्नि-अस्त्र-शस्त्रों की
अपनी शक्ति बढ़ानी होगी।

जिसने हम को दलित बनाया
जिसने हम को पतित बनाया,
उसी स्वार्थ से बने हुए
वाडो में आग लगानी होगी।

सच है जग की सारी आशा
भारत पर ही आधारित है,
प्रभु के प्रति भारत की आदि-
प्रतिज्ञा तुम्हे निभानी होगी।

तुम आत्मा हो, इन आदर्शों
के प्रति केवल जीना होगा,
औ' आदर्श जिए बस उसके
लिए मृत्यु अपनानी होगी।

---

आर्य का अर्थ अपने मौलिक अर्थमें सत्य का पुजारी है।

# दुर्गा का आह्वान

जागो वीरो युद्ध नही यह दुर्गा का आह्वान है।
माता का आह्वान है।

मन मे उठती वीर-भावनाएँ मब मंत्रोच्चार है,
स्वाहा की आवृतिया, ऊँची वीरो की हुकार है,
मनुज-रक्त की ये प्रणालिया देव-अर्घ्य-आधार है
सब दुर्बलताएँ ममिधा वन जलने को तैयार है।
यह नेफा, लद्दाख नही, यह पावन यज्ञ स्थान है।

आदि काल से समाधिस्थ जो तुग हिमालय मौन है,
तप साधन का केन्द्र शिवालय! जग क्या जाने कौन है?
इस जग के उन्नत प्रहरी का आज मौन क्यो बोला है,
कौन विपद् आई जग पर जो ऊँचा आसन डोला है?
किधर चल पडा श्वेत, शुभ्र यह शकर का रणयान है।

जग के सत्य सैनिको तुमको अब चुनाव करना होगा,
या तो रक्षा करो सत्य की या जग को मिटना होगा,
वह मुहूर्त अव आ पहुँचा है जब पर्वत फट जाते है,
औ' नितान्त जड़ के भीतर से जब कि देव जनमाते है,
उस निर्णायक क्षण के पीछे छिपा देव-वरदान है।

बांहे हिला-हिला कर तुमको तरु-पक्तिया बुलाती है,
औ' खाइया तुम्हारी रक्षा के हित होड लगाती है,
तुम्हें भेंटने को चट्टानों ने खोली निज छाती है,
गगन जोहता वाट यहा औ' पवनें चँवर डुलाती है।
चला दौडता आ, यह दुर्गा मा का अक स्थान है।

भारत की गाथा तो ऋषि-जीवन की अमर कहानी है,
जिसने गिर-गिर कर ऊँचे ऊँचे उठने की ठानी है,
जिसकी सस्कृति ही जीवित देवों की अमिट निशानी है,
सारे जग को मिलकर उमकी लज्जा आज बचानी है।
उसकी पूर्ण सफलता तो सारे जग का उत्थान है।

---

यह कविता चीन के आक्रमण के ममय लिखी गई थी।

# प्रभु-सेनानी*

हे प्रभु के सूरमा और सेनानी ।
हे स्वदेश के नायक औ' बलिदानी !
तेरे लिए शोक औ' पीड़ा कैसी ?
कैसा तुझ को कष्ट, यातना कैसी ?

तेरा जीवन तो इक दीप्त कीर्ति है,
और चमकती हुई हिमांशु ज्योति है,
तेरे सारे कर्म पुनीत यज्ञ है,
औ' प्रभु पर अर्पित साकार हव्य हैं ।
तेरी जय एक दिव्य रूपान्तर है, सरबसदानी ।
और पराजय भी तो तेरी जय है, सुरकुलमानी ।

जब तक मुक्त है भुजाएँ लडता चल,
हाथो से तलवारो से लडता चल,
लडता चल तू निज मस्तिष्की बल से,
और आयुधो के मारे कौशल से,
क्या वैरी ने तुझे बनाया बन्दी है अभिमानी ?
ठूम वस्त्र मुख में ताला भर दिया, सत्य-संधानी ?

तो तू लड़ता चल अपनी आत्मा से,
उसकी सर्व वेष्टिनी नीरवता से,
निज सकल्पशक्ति की असीमता से,
कभी न डिगनेवाली निज दृढता से,
यदि तू अपने शरीर को तज भी दे,
तो लडता चल वही महान् शक्ति ले;

किए हुए है जो जड को आलिंगित,
अंतर-प्रभु से हो कर जो उद्वेलित,
क्यो न जोड़ ले उस से हीं तू अपनी सकल कहानी,
और सौंप दे प्रभु के कर मे अपनी सब निगरानी ।

कहा रहेंगी फिर भय औ' बाधाएँ
तेरे अंतर-सागर के अतलों में?
अपितु उपरितल के घोर गर्जनों मे
लहराती आती तट की लहरों मे
भी तो तुझे हर्ष-उन्माद मिलेगा, अंतर्ज्ञानी!
कर्म-समर में मुक्तात्मा यह है ऐसी लासानी।
आत्मा खुद तो कर्म न करती दिखलाई पडती है,
छोड़ रही पर श्वासो मे कर्मों की गर्म रवानी।

---

यह श्रीअरविन्द की एक कविता का भावानुवाद है।

# मातृ-वन्दना

हे विश्वात्मा भारत माता हमको निज चरणों में रति दे!

भव-सागर को मथते रहे जो आदि सृष्टि में पड़े अकेले
जाने कितनी आंधी झेली तूफानों के कितने रेले,
पर के सहे आक्रमण कितने अपनों के दुर्भाव घनेरे,
भांति-भांति से धर्म-ध्वजा को थापे रहे किन्तु कर तेरे,
सत्य-गोपिनी, ज्योति-वेष्टिनी अब निज गोपन को नव कृति दे!
विश्व प्रेममयि भारत माता! हमको निज चरणों में रति दे!

भाषा-भाषा के माध्यम से एक आत्म-अभिव्यक्ति सिखा दे,
जाति-जाति के उद्देश्यों को नयी ज्योति नव शक्ति दिखा दे,
अप्रकट है अब तक जो, वह भारत का चरम सत्य प्रकटा दे,
तन को आत्मा का माध्यम औ' आत्मा को साकार बना दे,
आत्मिक-भौतिक चिर आनंद की जग को अनुपम पूर्ण भक्ति दे!
हे आनंदमयि भारतमाता, हमको निज चरणों में रति दे!

ज्ञानों-विज्ञानों ने यद्यपि जग का बहुत विकास किया है,
अलग-अलग दीवार उठाकर अशुभों को भी जन्म दिया है,
प्रति विद्या प्रत्येक कला को निज शिखरों के साथ जोड़ दे,
प्रति विचार प्रत्येक भाव के उड़ने को निस्सीम शक्ति दे,
सब विद्याओं और कलाओं को मां उनकी चरम मुक्ति दे!
सर्व सुन्दरी, सर्वज्ञानमयि, मा अपने चरणों में रति दे!

भुला दिया था तुझ को हतभागे तेरे ही निज पुत्रों ने,
किन्तु किया है महा विपद् में याद तुझे आप ही उन्होंने,
तो अब तेरी कृपा चाहिए, जिससे सब कुछ बन सकता है,
माना बिगड़ चुका सब कुछ, पर तप से निर्मित हो सकता है,
वर्तमान के तम में एक सनातन रवि की अपार ज्योति दे!
हे दुर्गा, हे करुणामयि मा! हमको निज चरणों मे रति दे!

# प्रणाम

भारत माता तुम्हें प्रणाम।
हम सब तेरे पुत्र तुम हमारी हो माता,
तुम को सब कुछ अर्पित अरे हमारी त्राता,
श्रम, बल, खून-पसीना सारा तुमको अर्पित
धन वैभव औ' कीर्ति हमारी तुम्हे समर्पित
हे करुणामयि, निखिल प्रेममयि! तुम्हे प्रणाम।

पर्वत औ' मैदान नदी की ये रेखाएँ,
मनुज बुद्धि के वैर विरोधों की बाधाएँ
रचती हैं निज रूप नित्य ये अभिनव नाना,
क्योंकि हमारे अंतर ने न तुम्हे पहचाना।
भित्ति विमर्दिनि, सीमा भंजिनि तुम्हे प्रणाम।

देख न पाएं जब तक तेरा आनन प्यारा,
स्वार्थ अहम् ही बना हुआ है ध्येय हमारा,
इच्छाओ औ' शक्ति-अर्चनाओ की धारा,
हमे चाहिए मातु सहारा एक तुम्हारा।
सकल देवताओं की जननी तुम्हे प्रणाम।

वाद-विवाद समा जाएँ प्रेम में तुम्हारे,
हम सब ले नाना संकल्पो के व्रत न्यारे,
यथा वाटिका मे हों विकसित पुष्प सँवारे
फूले फले कार्य नव-नव रंगो मे प्यारे।
ज्योतिर्वर्धिणी, प्रगति दायिनी तुम्हे प्रणाम।

झूठे जाति-धर्म को तोडो नव निर्मात्री
तुम में ही सब लय हो जाएँ सत्य-विधात्री,
शासक नही सभी हों सेवक औ' अनुसारी,
हम सब हों बस एक मात्र मा प्रजा तुम्हारी
प्रेम-तंत्र की ओ सम्राज्ञी तुम्हें प्रणाम।

आज जगाओ हममे अपना वही तपोबल,
जिसने तुम्हें सृजन-आनन्द हित किया विह्वल,
जिस इच्छा से तुमने विकसाए नारी नर,
आज बनाओ भूतल को निज इच्छा का घर।
आनंदधामा, पूर्णप्रकामा तुम्हें प्रणाम।

# आत्म-चमत्कार

प्रकटा दो अपना चमत्कार।
हो जाय व्यर्थ की बात बंद
हो जाय व्यर्थ का शोर बंद,
पा जायं भाव तेरा दर्शन
बन जाय काव्य के सूक्त, छन्द,
वाणिया बने मंत्रोच्चार।

मन की चंचलता रुक जाए,
प्राणो की अविरल चीत्कार,
जल उठे हृदय की अमर ज्योति
मिट जाय भ्रांतिया ये अपार,
भीतर बाहर के अंधकार।

दुर्बल को तेरी शक्ति मिले
निर्गृह को तेरा सदागार,
ढह जायें दुर्बल शरणस्थल
तेरे भुज ले सबको दुलार,
क्या पुण्य और क्या दुराचार!

धुल जाए काम-वासना सब
हो जाय जेल से मुक्त प्रेम,
कुंठाओं से मन मुक्त बने,
ढह जाएं झूठे धर्म, नेम,
क्यो भेद भाव का हो विचार?

जड़ता खोले अपना रहस्य
खिल उठे प्राण-आनन्द कमल,
मानव मन का सब ज्ञान, ध्यान
फैले बनकर सुन्दर निर्मल,
जग हो वसंत का चिर विहार।

## शक्ति अवतरण

हे जग-जननी आओ !
भारत के सामूहिक मन पर
इक प्रकाश का हमला बोलो
और पुराने संस्कारों के
पड़े हुए पट पर पट खोलो।
तमस् तोड़ कर सकल देश का
फिर से हृदय जगाओ।

कुछ करने के दृढ़ निश्चय को,
कुछ नव रचना की इच्छा को,
इस उत्साही अंध भीड़ के
देश प्रेम से जलते उर को
अहम् आवरण चीर-फाड़ कर
सत्य दृष्टि दे जाओ।

नाना धर्मों, वादों में पड़
शक्ति खो रहे इन शूरों मे,
वित्त, कामना, यश से प्रेरित
मानवता के क्लीब क्षणो में
रण चंडी सी कूद हृदय पर
सब कुछ भस्म कराओ।

मिटा सकल स्वार्थ-भावनाएं,
वहा सकल कीर्ति-कामनाएं,
भर निष्काम कर्म-ईप्साएं,
उन्नत औ' महान् काक्षाएं,
जन-जन के सूने मंदिर को
सत्य-प्रतिष्ठ बनाओ।

एक सत्य के सेवक हो सब
धनी-निर्धनी औ' शासक-शासित
स्वतंत्रता के बनें पुजारी,
प्रेम-सिंधु से कर बल अर्जित
महा शक्तिवाही भारत का
सिंह रूप प्रकटाओ ।

भारत की पटु कुशल नीति से
मिथ्या की चालें प्रकटा कर
औ' तप की इक अगम शक्ति से
मानव का अज्ञान मिटा कर
युगों युगों से सतत अपेक्षित
चमत्कार करवाओ ।

# भविष्य-दृष्टि

## एक प्रभो

श्रीअरविंद विभो, मेरे एक प्रभो !
इस अज्ञानी मन पर आज द्रवो।

मब भावों मे सत्य ढूंढना मेरा ध्येय बने,
मकल क्रिया में तुम्हें देखना मेरा धर्म बने,
सब गतियों में मुझे एक कर लो !
मेरे एक प्रभो !

भक्ति तुम्हारी मम अन्तर की अविकल ज्योति बने,
किन्तु पलायन नही कर्म ही जीवन-पूर्ति बने,
मकल अशिव को चिर शिव मे बदलो।
मेरे एक प्रभो।

बाहर के विरोध सारे मम पथ के फूल बनें,
अंतर के गहरे निरोध नव गति के कूल बनें,
विपुल विजय यह घोषित कर निकलो।
मेरे एक प्रभो।

जाने अनजाने सब कुछ तेरा ही ध्यान बने,
क्षण क्षण जिऊँ श्वास लू तुम में जीवन गान बने,
निज जीवन में मम जीवन रच लो।
मेरे एक प्रभो।

## भविष्य की ओर

आज पग बढ़ा दिया।
एक आह्वान पर, अभिनव अभियान पर,
नवल सृष्टि दान पर, एक नव विहान पर
भूत और वर्तमान सभी कुछ गला दिया।
गगनमुखी ऊर्मिया मना करती रह गईं,
उधर स्नेह-डोरिया खीचती ही रह गईं,
किन्तु एक कशिश ने विवश ही बना दिया।
सुहृद् और स्वजन सब बिलखते ही रह गए,
प्राण के आवेग सब उबलते ही रह गए,
किन्तु एक क्षुधा ने सभी बलि चढ़ा दिया।
जीर्ण सस्कार सब सिसकते ही रह गए,
धर्म औ' आदर्श सकल टेरते ही रह गए,
कीर्ति औ' विभूति आज सभी को ठुकरा दिया।
(तब फिर) ऊर्मियों ने खीचकर हृदय से लगा लिया,
मै बनी समर्पिता अहं को मिटा दिया,
कामना को एक-एक ताल पर लुटा दिया।
(बस फिर) दृष्टि ही बदल गई, दृश्य ही बदल गया,
ज्वाल का महान् सिंधु शान्ति सिन्धु बन गया,
स्वर्णमय भविष्य को सामने सजा दिया।
एक अमर शान्ति ने सभी कुछ दिला दिया,
एक अमर दृष्टि ने, मृतो को जिला लिया,
और वस्तु वस्तु में देव को जगा दिया।
एक रूप निरख सकल रूप मन्द पड़ गए,
एक ज्ञान को निहार पूर्व ज्ञान दूर गए,
फूट एक किरण ने उडु-निकर बुझा दिया।

# स्वर्णिम परिवर्तन

स्वयं वासना भक्ति बन गई।
मैं क्या जानू ज्ञान ध्यान औ'
जप तप कोई नही किया है,
मात्र अंक में तेरी निज को
एक बालवत् डाल दिया है।
तुझको अर्पित होते-होते सब दुर्बलता शक्ति बन गई।

इन इन्द्रिय भोगो के पीछे
इक अनन्त कामना छिपी है,
वस्तु-वस्तु मे वस्तु-'प्राण'को
लखने की लालसा छिपी है,
उसकी मुख छवि दिखते ही जगचर्या शाश्वत मुक्ति बन गई।

अगर इन्द्रिया उस अरूप को
कही रूप मे व्यक्त कर सके
निराकार को साकारी कर
आलिंगन आबद्ध कर सके,
तो देखोगे सारी जडता, आत्मा की अभिव्यक्ति बन गई।

व्यक्ति विश्व को करे व्यक्त तो
अह कभी अपराध नही है,
निज मे जग को भर पाए तो
निजता कोई पाप नही है,
एक व्यष्टि की दिव्य कान्ति ही तो समष्टि की मुक्ति बन गई।

कष्टो को सह सह कर ही तो
देह-धर्म की आंख खुल रही,
अंतर से इक आग जाग कर
बाधाओ को भस्म कर रही
और मृत्यु ही नश्वरता में शाश्वतता की युक्ति बन गई।

जब से जीवन कोलाहल में
नीरवता का स्पर्श मिला है,
औ' इस पार्थिव क्षुद्र प्रेम में
जब से दिव्यानन्द मिला है,
तब से स्वर्णिम विधि-परिवर्तन मेरी दिव्यासक्ति बन गई

## दुःख का रूपांतर

मेरे दुःख मौन ही रहना।
सह कर सब आघात नीर को
भीतर ही भीतर पी लेना,
देख किसी को आह न भरना,
रह न सको तो मुसका देना।
दृष्टि सदा अति उज्ज्वल रख कर,
दुर्बलता को राह मत देना।

कह देने से बह जाएगी
अंतहीन सब शक्ति तुम्हारी
समाधान कुछ दे न सकेंगे
ये तेरे होते हितकारी,
कुछ कहना ही है, तो अपनी
सर्वजयी आत्मा से कहना।

दुख तो प्रकाश की दस्तक है
दबे पांव जो देता फेरी,
लौट गया यदि एक बार तो
हो सकती फिर अनन्त देरी,
उसकी अगवानी को तत्पर
सब सत्ता को प्रतिपल रखना।

उसके एक एक इंगित पर
फेंक जीर्ण मूल्यों को देना,
नहीं झिझकना, नहीं सोचना
न सुगम पथ कोई चुन लेना,
सारे आत्म समर्पण को ही
पूर्ण सत्य में तुम्हें बदलना।

जब तक जग का दुख-सागर सब
मेरे बिन्दु में न भर जाए,
दुख अपने मौलिक आनँद मे
जब तक फिर से बदल न पाए,
तब तक इक टक होगा जलना,
एक एक काटें को लेकर
फूलों में परिवर्तित करना।
मेरे दुख मौन ही रहना

हे मेरी आत्मा के ईश्वर!
हे मम सत्ता की महेश्वरी!
मैं धर्माधर्मम् क्या जानू
मैं सत्यासत्यम् क्या जानू
ये बनते हैं औ' मिटते हैं,
ये चढ़ते हैं औ' गिरते हैं,
मुझको वे क्षण वीरान बने
तुम रहे जहा से अनुपस्थित।

कर्तव्यो में मैं लगी रही,
आचारो में मैं पगी रही,
जीवन नीरस हो उठा सकल,
औ' कूच कर गया अतर-बल,
ये रूढ नीतिया धूल बनी
तुम रहे जहा से अनुपस्थित।

मैं पर-उपकार निमग्न बनी,
आदर, पूजा मे लग्न बनी,
दुखिया का दुख कुछ मिटा सकी,
पर अंतर-तिमिर न भगा सकी,
दुख ने ली नई नई राहें
तुम रहे जहा से अनुपस्थित।

अत. प्रेरिता कलाओ मे,
रचनाओ में, कविताओ में,
झलकें पाई कुछ कही कही
पर रूप तुम्हारा दिखा नहीं,
ढह गए खण्ड आदर्श सकल
तुम रहे जहां से अनुपस्थित।

नानाविध तेरी व्याख्या कर
मथ डाला ज्ञानों का सागर,
ज्ञानी मन में मदमत्त हुआ,
जीवन से ज्ञान विरक्त हुआ,
जीवन मरुथल बन गया सकल
तुम रहे जहां से अनुपस्थित।

जग को ही राहत देने हित
तप किया मनुज ने अत रहित,
बन गया स्वयं ही ईश मगर
जगदीश्वर को निष्कासित कर,
रो उठा हृदय अंधे बल पर
तुम रहे जहा से अनुपस्थित।

इक गहन ध्यान में लग्न हुई,
नीरव समाधि में मग्न हुई,
आत्मा का हीरा मिला मगर
हो गया स्खलित जग-कोप अमर,
जीवन से हाहाकार उठा
तुम रहे जहा से अनुपस्थित।

शास्त्रो ने बहुत प्रकाश दिया,
पर ज्योति परम वह मिली नही,
औ' दिया मोक्ष ने आनंद चिर
पर अंतिम सीढी मिली नहीं,
हो सकी प्रकृति सन्तुष्ट नही
तुम रहे जहां से अनुपस्थित।

(एक उलाहना)

फिर तुमने ये सकल सिद्धिया क्यो दी थी ?
मन को यह अनुपम वैराग्य क्यो दिया था ?
जिसने एक बार तो सब दुख-
सुख पर विजय प्राप्त कर ली,
मानव को दी गई चुनौती
है अति साहस से सह ली।
अब जीवन की किस पुकार पर, उसे आज व्यर्थाया है ?

मानव को यह ज्ञान तपस्या क्यों दी थी ?
जब अपनी कल्पना-उड़ानो
से अनंत को भेट लिया,
जब अपने सपनों मे उसने
सूक्ष्म अदृष्ट समेट लिया,
तो सबका कुल जोड़ शून्य क्यों आया है ?

मानव को यह भक्ति प्रवणता क्यो दी थी ?
अपने अंतर में जब उसने
तेरी छवि को देख लिया,
औ' उसके पीछे पीछे जा
चिदानन्द को भेट लिया,
तो किस जग-गुहार ने आ, विचलाया है ?

मानव को यह मोक्ष-कामना क्यों दी थी ?
जिसने सीढी सीढ़ी करके
मुझ को वहा चढाया है,
जहा कि परम शान्ति में माया
से छुटकारा पाया है,
अब माया ने क्या रहस्य प्रकटाया है ?

...

...

यह तुम ने क्या कर डाला ?
परम चरम उस सुख से मुझ को
बरबस नीचे खींच लिया
पर्वत से ढकेल कर मुझको
पुन नर्क को सौंप दिया
मेरा शीश घूमता है ।

इस माधारण जीवन में फिर
जीने को मजबूर किया,
मेरी सकल सिद्धियों का क्या
अंतिम फल है यही दिया ?
मेरा हृदय डूबता है ।

...

...

क्या कहते हो, यह आत्मानंद
मेरा मात्र पलायन था ?
सारे जग के चिर वैभव में
यही स्वर्ग अभिगोपित है !

क्या कहते हो, आत्म-समर्पण
मेरी पहली सीढी था ?
आत्मा की परिपूर्ण प्रभा तो
यही पड़ी अभिमीलित है ।

क्या कहते हो, कोई सिद्धि
न हो सकती सुप्रतिष्ठित है ?
जग-रूपी प्रभु-तन मे जब तक
आत्मा ही अनुपस्थित है ।

क्या कहते हो मुझे मृत्यु का
[illegible]न-यही तो करना है ?
अमर्त्यता का मव वैभव तो
खुलने को लालायित है ।

यह मुझ से कैसे होगा ?
लो मैंने अपने मन को अब
रीता करके छोड़ दिया
लेकर अपना स्वर्ण ज्ञान तुम
आकर इसमें वास करो।

लो मैंने निज प्राणो से सब
इच्छाओ को खीच लिया
लेकर शाश्वत प्रेम अमल तुम
जग से नव व्यवहार करो।

लो मैंने तन से विषयो को
अपने निपट उघेड लिया
लेकर अपने अमरानँद को
नव जीवन व्यापार करो।

मैंने अपनी सारी सत्ता
को चरणो मे सौप दिया,
अब तुम अपने घर मे आकर
निज इच्छा साकार करो।

तुमने ही स्व-आत्मबलि से था
जडता का निर्माण किया
और कौन है ? केवल ! इसका
तुम्ही आज उद्धार करो।

# मानव-असमर्थता

इनको हम न पकड़ पाएँगे।
मन प्राणों की सकल शक्तियां,
जिनका तन आवास बन चुका,
जिनका अति दृढ़-शासन मेरे
स्वभाव का संस्कार बन चुका।
बिना तुम्हारी शक्ति मूल से
ये न उखड़ पाएँगे।

जो सत्य के मुखौटे धारण
कर कर घर में घुस आते हैं,
अवर शक्तियों के आने को
और सुरंग बना जाते हैं।
बिना तुम्हारी दृष्टि, झूठ-सच
हम न परख पाएँगे।

बहुत त्याग-तप कर करके हम
उच्चादर्श बना पाते हैं,
प्राणावेग छिपे, क्षण में आ,
फिर भू लुंठित कर जाते हैं।
बिना तुम्हारे प्रकृति-नियम ये
हम न बदल पाएँगे।

बस भौतिक आवश्यकताएँ
ही अविरत शासन करती हैं,
औ' स्वर्णिम सपनों को अपने
[illegible] देती है।
बिना तुम्हारी ज्योति, सत्य ये
कहा पनप पाएँगे।

जीवन मानो चूक गया सा
चमत्कार बन पड़ा हुआ है,
बिगड गई सी महाकला का
मूढ दृश्य बन खडा हुआ है।
बिना तुम्हारे स्पर्श, न शाश्वत
रंग उभर पाएँगे।

दो वह शक्ति कि नए वर्ष में
पूर्णतया निज को पहिचानें,
मिथ्या, मोहो, अहमों, दुर्बल
कर्मों को तजने की ठानें।
और तुम्हारी इच्छा को ही
निज संकल्प बनाएँ।

दो वह शक्ति कि सकल भूत को
सह परिवार झकोर ढहाएँ,
निज सत्ता के ज्योतित पट को
धूल झाडकर स्फटिक बनाएँ।
उसमें छिपी तुम्हारी सुषमा
जीवन में प्रकटाएँ।

हे ज्योतिर्मय शुद्ध सत्यमय!
सर्वशक्तिमय हे जगदीश्वर!
अखिल प्रेममय, निखिलानँदमय
पूर्ण ज्ञानमय, परम अधीश्वर!
सतत तुम्हारे ही शासन को
दुखी धरा पर लाएँ।

हे भगवान् तुम्हारी जय हो।
हे भगवती तुम्हारी जय हो।

तुमने अपना सब कुछ हमें दे दिया,
न्योछावर सब भगवत्-प्रेम कर दिया,
अज्ञान की जड़ों को उखाड़ने में,
तुमने उँडेल स्रोत प्रकाश का दिया।
सर्व प्रकाशातीत तुम्हारी जय हो।

और प्रकृति से किया हुआ सब वादा,
तुमने स्वयं व्यक्त हो पूर्ण कर दिया,
शाश्वतता पर चढ़ा हुआ मानव का
ऋण सब निज तापस बलि से चुका दिया।
समस्त यज्ञातीत तुम्हारी जय हो।

पर यह मानव चढ़े दिव्यता-ऋण को,
जाने कब जाकर पूर्ण कर सकेगा,
कब तक दुर्बलता का लिए बहाना,
दया-भीख का प्रार्थी बना रहेगा?
समस्त करुणातीत तुम्हारी जय हो।

सकल भोग जब भोग लिए जाएँगे,
सकल कामनाएँ जब चुक जाएँगी,
तब शायद हम तुमको सुन पाएँगे,
और तुम्हारी ओर देख पाएँगे।
सर्व कामनातीत तुम्हारी जय हो।

जब सब विषय रिक्त खुद ही जाएँगे,
और अहं मारे थक-थक जाएँगे,

तभी तुम्हारे प्रति जड हृदय खुलेगा,
तभी वज्रद्वारी अवरोध मिटेगा।
सर्व वासनातीत तुम्हारी जय हो।

जब सब स्नेह खोखले रह जाएँगे,
सकल प्रेम जब धोखा दे जाएँगे,
तभी प्रेम शाश्वत खोजा जाएगा,
तभी सर्व सुन्दर वह प्रकटाएगा।
हे भव-प्रेमातीत तुम्हारी जय हो।

सकल झूठ जब खोज लिए जाएँगे,
जब सब अशुभ निरावृत हो जाएँगे,
तब प्रकाश अपना चीवर टारेगा,
ज्ञान अहं अपना सब कुछ हारेगा।
समस्त ज्ञानातीत तुम्हारी जय हो।

जब तक न इन्द्रिया अंतरमुख होगी,
औ' न स्वय आत्मा का करण बनेंगी,
तब तक सभी तितिक्षा व्यर्थ बनेंगी,
सारी शिक्षा निष्प्रभाव ही होगी।
सर्व इन्द्रियातीत तुम्हारी जय हो।

जब मन की चचलता मिट जाएगी,
जब सारी उत्कठा चुक जाएगी,
तब समता कर्म मे प्रवेश करेगी
तब नीरवता निज को व्यक्त करेगी।
हे नीरवतातीत तुम्हारी जय हो।

## अनुनय

क्या मुझ को वह बल दोगे ?
सत्य मानकर पुजनेवाली
मिथ्या का दम तोड सकूं,
और भटकती हुई भीड़ को
तेरे पथ पर मोड़ सकू।
क्या मेरी निर्भ्रांत दृष्टि को
वह एक निष्ठता दोगे ?

कैसा भी खतरा हो उसको
निर्भय होकर झेल सकू,
जपकर तेरा नाम मंत्र मैं
सब छद्मो को खोल सकूं।
क्या मेरे अपूर्व निश्चय को
वह आत्म-अभयता दोगे ?

शका औ' संदेह धरा के
विधि-लेखे से मिटा सकू,
और दिव्य जीवन के सपने
को भू पर सच बना सकू।
क्या मेरी संकल्प शक्ति को
वह ज्ञान विमलता दोगे ?

भू का सब श्रम सार्थक होगा
ऐसा ढाढ़स बधा सकू
प्रति संकट की घड़ियो में प्रभु
ही पीछे हैं दिखा सकूं।
क्या मेरा विश्वासमय [illegible] को
शाश्वत गतिमत्ता दोगे ?

# आरोहण-अवरोहण

मुझे वही जाने दो,
पहले मुझे वही जाने दो .
उस सुशान्त नीरवता में कि जहा पर,
वह एकम् की गोदी में पलता है,
मुझे वही से विशालता की
सर्व दृष्टि पाने दो।

मुझे वही जाने दो...
जहां काम मे हो या कि विश्राम मे,
मन का ध्यान सुकेन्द्रित ही रहता है,
मुझे वही से प्रकृति-चपलता
का रहस्य पाने दो।

मुझे वही जाने दो...
जहा रात दिन औ' प्रात. से सध्या
आत्मिक भास्कर मंद नही पडता है,
मुझे वही से अंधकार का
मूल स्रोत पाने दो।

मुझे वही जाने दो .
जहां कि हर्ष, शोक औ' पाप-पुण्य सब
इक आनंद मोक्ष का देते रहते,
मुझे वही से द्वंद्व नीति का
प्रकृति भेद पाने दो।

मुझे वही जाने दो...
जहा कि नाना अहमों, इच्छाओ मे
आनन्द एक ही [illegible]
मुझे वही से व्यक्ति अह का
मूलाशय पाने दो।

. . .          . . .

मुझे वहीं से अमृत धार लाने दो,
फिर बहुता का उपवन विकसाने दो
मब कुंठित पुष्पों को मुसकाने दो,

मुझे वहीं से अमर्र अग्नि लाने दो,
संस्कृतियों को खाए काल जा रहा
मुझे काल को ही अब खा जाने दो।

मुझे वहीं से अमर शक्ति लाने दो,
धर्मों ने है जिसकी झलक दिखाई
उसे कर्म के द्वारा प्रकटाने दो।

मुझे वहीं से विश्व प्रेम लाने दो,
विभाजनों, वादों और सम्प्रदायों
के जलते भवनों पर बरसाने दो।
जिसमें रह उनका अस्तित्व न जाए
और एकता जीवन रस बन जाए।

जीवन को अब करो न और उपेक्षित
इसमें ढल होना है प्रभु को मूर्तित
मानव को इससे कम कुछ न अपेक्षित
उसके हित सब कुछ बलि हो जाने दो,
जितनी देर लगे अब लग जाने दो।

सब बाधा बंधन तिर जानेवाली
कष्टों को आनन्द बनानेवाली
हे भगवती तुम्हारी जय हो।

मा कुछ ऐसा चमत्कार तुम कर दो,
हे जननी हमको कुछ ऐसा वर दो,
मन सब अपनी वक्रिल गति बिसराए,
अंतर का सब कुछ सीधा हो जाए,
सकल परिस्थितियों से ऊपर उठकर,
निरखें हम सब कुछ से विमुक्त होकर।

बस अपनी इच्छा पूरी होने दो,
हमको एक इशारे पर नटने दो,
अंग अंग सब बँधे ताल की लय पर,
दृष्टि लगी हो केवल लक्ष्य-बिन्दु पर,
कर्म छुटें धनु से जैसे सीधा शर,
कान बधिर हो जाएँ औ' मुख नि.स्वर।

मन सो जाए नेत्र जगे रहने दो,
काया को निज अथक कर्म करने दो,
ऐसी द्रुततर गति से कर्म चलें बस
जग जिस को इक जड़ता समझे बेबस,
इस जड़ मे सब निष्क्रियता गल जाए,
और चेतना ही कस कस भर जाए।

हमें पूर्णत· ध्यान प्रतिष्ठित कर दो,
नव सृष्टि की प्रसूति-वेदना [illegible]
वह वेदना लिए हम क्षण क्षण ...,
कण कण में हम नव नव रहस्य खोलें,

जब तक ऊषा चमक न उठे क्षितिज पर
तब तक कुछ न विचारे पीछे मुड़कर।

सारी सत्ता को तुम अधिकृत कर लो,
कृतज्ञता से मेरा कण कण भर दो,
कह लेने दो तबतक जग को जी भर,
कर लेने दो रिक्त घृणा के सब द्वार,
जब तक मेरा गर्व न सब चुक जाए,
अहं असंभव ही मुझ में हो जाए।

हमें एक लौ के समान जलने दो,
अडिग, अचल औ' अतरस्थ रहने दो,
नेत्रों को अपनी महिमा लखने दो,
कानो को अपनी गरिमा सुनने दो,
हाथों को निज आलिंगन से भर दो,
हर बाधा मे अपना ही चुम्बन दो।

सब मिथ्याओ की ध्वंसक ऋतेश्वरी !
सकल सकटों की तारक महेश्वरी !
हे भगवती तुम्हारी जय हो !

# अलौकिक प्रभाव

एक प्रभाव उतरता आता है।
एक बहाव बहाए जाता है।

सह जिसका आघात न पाते हैं,
गिरते, चिल्लाते फिर उठ चल देते हैं,
उसको नही रोक भी कोई पाता है।

गलियो, सडको, राहों औ' बाज़ारों मे,
जीवन के प्रति प्यारो और प्रहारो मे,
सुनो न सुनो सदा कुछ कहता जाता है।

लापरवाहो, कमज़ोरो, आलसियों से,
निरुत्साहियो और बहानेबाजों से,
वे कुछ करे न करे, कराये जाता है।

लडने और झगडनेवाले धर्मों को,
अपने को प्रभु कहने वाले अहमो को,
उनकी ही लाचारी से मिटवाता है।

सब सरकारे जिसको ढूढा करती हैं,
जिसे पकड़ने मे न सफल हो सकती हैं,
तोड़ विधानों को परिवर्तन लाता है।

नही नीतिया जिसको है धर धर पाती,
ज्ञानो की प्रतीतिया ओछी रह जाती,
सारे शास्त्रों को वह उलांघ जाता है।

जो न समझने [illegible] ता है,
जो जन बदल नही अपने को पाता है,
वही अंत में टूट फूट रह जाता है।

जो उसके सम्मुख निज हृदय खोलता है,
जो उसके सब वेगों को सह सकता है,
उसको ही वह सर्वप्रथम अपनाता है।

जो उसके प्रति पूर्ण समर्पित होता है,
उसको वह फिर अपने हाथो गढता है,
गढ इस माटी को सोना बनवाता है।

यह इक ऐसा सुसंतोष है, सुख है,
जो कि कामना कर से जाता खस है,
अह न जिसको कभी बाध पाता है।

यह तो सर्वग्राही एक ज्ञान है,
दर्शन पाता जिसका नही मान है,
ज्ञानी उसको पकड नही पाता है।

यह तो सर्वाश्लेषी एक प्रेम है,
अतर स्वाधीनो का एक नेम है,
मानव प्रेम न जिसको सह पाता है।

यह तो नानारगी सुन्दरता है,
यह तो सत्य सूर्य की उज्ज्वलता है,
जिसे न कोई दूषित कर पाता है।

यह न किसी मे समझौता करता है,
नही प्रार्थना कोई भी सुनता है,
क्योंकि यह बदलने हमको आता है।

वृद्धों में नव तरुणाई लाता है,
तरुणों मे गहराई भर जाता है,
मर्त्य में अमर ही उतरा आता है।

[illegible] न्यारी एक रीति है,
नही पतित होने का कही नीति है,
क्योंकि पतन को भी नव जनमाता है।

मानो मैं ही दौडी जाती हू।
        जिस दिन से मैं जड को फोड वही,
        रुकी नही मैं पल भर अरे कही,
इक इंगित पर दौडी जाती हू।

        पशु पक्षी से लेकर मानव में,
        देव देव से लेकर दानव में,
'उसे' खोजती बढ़ती जाती हू।

        प्रथम अविद्या का कचुक बुन कर,
        पुनः ज्ञान-पट ससका ससका कर,
उसको यही भेंटने आती हू।

        विश्व-कारवाँ की अविरत गति मे,
        इसकी सारी उन्नति अवनति में,
युगल चेतना-छोर मिलाती हूं।

        सतत वायु की गति के धावन में,
        सर सर खमखम गुजित कानन में,
उसका ही संदेश गुंजाती हूँ।

        तारो की रहस्यमय टिमटिम में,
        और सुधाशु-अमिय की रिमझिम में,
उसका गुप्तानंद बरसाती हूँ।

        सरिता की [illegible]
        झागों की झर्झरित लोरियो में,
उसका गीतोन्माद सुनाती हूँ।

औ' सागर की हर हर ध्वनियों में,
उच्चमस्तकी शिखरावलियों में,
उसका शक्ति-तपम् प्रकटाती हूँ।

कलियों की इस लज्जित मुकुलन में,
फूलों की इस विहँसित विकचन में,
उसका क्वारा प्रेम लुटाती हूँ।

दुख, पीड़ा की बेसुर तालों में,
और तपकते जीवन-छालों में,
उसकी साक्षी दे दे जाती हूँ।

कर्तव्यों की अविरत हांकन मे,
कर्म-दौड़ में मन की हांफन में,
एक शांति की याद धराती हूँ।

इक रोगी की तड़पन, टीसन में,
और यातना ग्रस्त कराहन में,
उसका पुण्यस्पर्श कराती हूँ।

चिकित्सकों के गहन परीक्षण में,
शुश्रूषक के सेवा-कार्यों में,
मैं उसकी करुणा बरसाती हूँ।

इच्छाओं के भंजित खण्डहर में,
और प्रेम के टूटे मंदिर मे,
मैं नव सर्जन दीप जलाती हूँ।

जीवन की मधुता, कर्कशता मे,
औ' जीवन की अध गर्तता मे,
नव साहस ले कूदी आती हूँ।

[illegible] मैं ही काली हूँ,
मानव फुलवारी का माली हूँ,
काट छाट उसको पनपाती हूँ।

मैं ही लक्ष्मी हूँ जो नर्कों से
मानव को, अभिमानी स्वर्गों से,
पूर्णानंद प्रति खींचे लाती हूँ।

फिर भी मन में निपट उदासी है,
मेरी इच्छा प्यासी प्यासी है,
उसके कंठ नहीं लग पाती हूँ।

मानव तुझ पर सरवस लुटवाया,
क्योंकि सत्य जो नहीं कहीं पाया,
तुझमें पाने को अकुलाती हूँ।

अपने प्रभु को मूर्तित करने की
जीवन में ही मधु-रस भरने की
मैं तुझ में ही आश लगाती हूँ।

## नूतन तान

छेड़ो प्रभु निज नूतन तान।

नव स्वर लहरी झंकृत हो इक
करे प्रफुल्लित जन-मन-प्राण।

शांति तुम्हारी उतरे भू पर
करे प्रसारित अपना राज,
दूर हटा पाखंड सभी जो
शांति रूप से पुजता आज।

कपट एकता औ' स्वतंत्रता
से जग मुख अपना मोड़े,
नव स्वतंत्रता, शांति, एकता
से केवल नाता जोड़े।

अंधी हिंसा, भक्ति दिखाऊ
झूठ छद्म का यह साम्राज्य,
बाह्य शक्ति के आराधक ही
बने हुए हैं पंडित प्राज्ञ।

नीति कुशलता बुद्धि-चातुरी,
भय से कांप रहा संसार,
छल का झंझा नृत्य हो रहा,
भोले जन बैठे चुप मार।

पर मैं देख रही परमानंद!
पु[illegible] ओढ़,
अपना अंतिम नृत्य दिखाकर
यथा रही मिथ्या दम तोड़।

दे अपनी आग्नेय बलमयी
स्वतन्त्रता, एकता, सुशांति,
आज उखाड़ो मिथ्या-शासन
जग के मुख पर लौटे कान्ति।

और पूर्ण हो सकल कामना,
पृथ्वी के तप साधन की,
सफल हो सकल अग्नि-परीक्षा
अश्रुस्रवित आराधन की।

ऋषि-मुनियों की सारी प्रज्ञा
स्वर्णिम परम्परा के साथ,
जुड़कर इस विज्ञानी मन से
करे प्रकृति को पूर्ण सनाथ।

हम देखें तव पूर्ण विजय के
फल का होते रस परिपाक,
औ' भू के नन्दन कानन में
फिरे प्रफुल्लित औ' ऋतवाक्।

# शाश्वत गंध

वह 'गंध' मेरे मन बस गई रे।
इक बन जूही, इक बन बेला,
अगणित गंधों का यह मेला,
पाकर इक दिन निपट अकेला
इन प्राणों को कस गई रे।

सब आनंद पड़ गया झूठा,
जितना मैंने अब तक लूटा,
तोड़ फोड़ पार्थिव सीमाएं
मम बोधों को ग्रस गई रे।

नभ से जिसकी डालें झुकतीं,
भू पर जिसकी कलियां खिलतीं,
जीवन के अनुपम उपवन में
बरबस आकर फंस गई रे।

इक छिन पच्छिम इक छिन पूरब,
भटक रहे जो गंध पंख सब,
उनको उनकी दिशा दिखाकर
सीधी उर में धंस गई रे।

पूरब पच्छिम एक हो गए,
सारे काल-विरोध चुक गए,
विश्वातीत एक सौरभ से
देश-काल को डस गई रे!

## पुष्प-पाती

मैं प्रभु की भेजी पाती।
जनम जनम के बिछुड़े इस मानव तक
जिसके घर से कोई खबर न आती,
उनका प्रेम सदेसा लेकर आती मैं मुसकाती।

उनके किए हुए पिछले वादे को
मैं सुगन्धि के मिस दोहराने आती
किन्तु प्रतीक्षारत विरली ही दृष्टि उसे पढ़ पाती।

कलाकार ही कोई मेरा मूल्य आंक पाता है,
कोई विरला कवि ही अंकित प्रेम परख पाता है,
कोई विरहिन ही रखती है मुझे लगा कर छाती।

ये स्वप्नीले रूप रंग औ' ये सुकुमार लकीरें,
मानव तेरे अंतर की हैं भिन्न भिन्न तसवीरें,
औ' प्रत्येक फूल है अद्‌भुत एक चेतना माती।

ये हमसे बाते करते है।
जब हम बिल्कुल चुप होते है,
अंतर मे लेते गोते है,
तब ये जडता के अंतर की
स्वर्ण कहानी कह जाते है।

जब भावों में लहरे आती
औ' भाषा असफल रह जाती,
तब ये मौन भंगियों से उस
चिर रहस्य को दुहराते है।

जब इक नया व्योम खुल पडता,
और उसे मन नही समझता,
तब ये मन के द्वार तोड कर
एक गंध ले घुस आते है।

जब हम बहुत ज्ञान की बातें,
कर कर के पच पच जाते है,
तब ये अपनी मुसकानो से
समाधान इक दे जाते है।

इस जग की दौडा-धूपी में
जब हम जल्दी में होते है,
तब ये अपनी आख नचा कर
ज्यो हम पर हँसते होते है।

सारी सम्पति रख कर भी जब
[redacted] रहते है,
ये इस भटके से यात्री को
घर की याद धरा जाते है।

जीवन भर कुछ ढूढ़ ढूढ कर
रह जाती इन्द्रियां रीतकर
तब ये इक विशुद्ध आनंद से
अंतर प्याली भर जाते हैं।

इन जड नास्तिक से करणों पर
श्रद्धा-शप्त बने हृदयो पर,
जड़ मे छिपी उपस्थिति की इक
मोहक साक्षी दे जाते हैं।

## कलिका

इस डाली के पलने मे,
कब से सोती हो कलिके
उर में मज मधु की प्याली,
अधरो में ऊषा-लाली,
कर मे सौरभ की झोली,
निधिया लुटती हिलने में।

निज छोर अछोर बिछाए,
मारुत है ताका करता,
इस जग की अबुझ प्यास को
तेरे सौरम से भरता,
कितना सुख है लुटने में?

पर इक क्षण के जीवन में
दिव-सुन्दरता प्रकटायी,
शाश्वतता के वैभव की
मर्त्यों को याद दिलायी,
बन गई अमर मिटने में।

## अर्पित कली

मैं चरणों पर अर्पित एक कली हूँ।
श्रद्धा ने इक ऐसा कवच बनाया
मैं शूलों पर भी रहती सँभली हूँ।

कीचड़ में जनमी, पर ऊर्ध्व प्रेरणा
से, रंगों सुगन्धियों में फूली हूँ।

सकल कलंकों औ' भूलों को लेकर
स्नेह-डालियों पर हँस हँस झूली हूँ।

लू के झोंके मुझे न झुलसा पाये
मैं जो कृपा-नीर में सिंची, पली हूँ।

यह मानव का सुमन हमें अति प्यारा।
इस में फूलों की छवि आकर हंसती,
फूलो में यह छवि है किन्तु न मिलती,
इसमें इक प्रकाश है सबसे न्यारा।

फूलों में प्रभु ने चेतना के सकल
चमत्कार, सौंदर्य सजाए अविकल,
इसमें खोली सशक्त जीवन धारा।

पुरखों के जीवन का जप है तप है,
निज कुल के भविष्य का बालातप है,
प्रिय जन, गुरु जन की आखोंका तारा।

सपनों ने कि जहां आकार धरा हो,
जहा प्रीति के मुख का पट उघरा हो,
नव आशा का उगता एक सितारा।

जिसकी मुसकान से अंधेरा कटता,
जिसकी किलकार मे कि सिंधु उमगता,
मानवता के आगन का उजियारा।

जिसने नश्वर भू पर स्वर्ग रचाया
परवश मानव क्षण को अमर बनाया
धन्यवाद उस प्रभु को बहुत हमारा।

## रवि-कुमार

जागो हे जागो रवि कुमार !
जागो नवीन विधि के स्रष्टा
नव मत्रो के श्रोता, द्रष्टा
जागो भविष्य के सृजनहार।

जीवन के प्रति व्यवहारो मे
औ' स्वभाव के उद्गारों मे,
खोलो आत्मा के बन्द द्वार।

बदलो कथनी से करनी मे,
कल्पना, कर्म की धरनी में,
भावी जीवन के कलाकार।

सुन्दर है ज्ञान प्राप्त करना,
सुन्दरतर है उस पर चलना,
सुन्दरतम, बनना तदाकार।

## शिशु-चेतना

आओ हम सब शिशु बन जाएँ।
धो डाले सब वैर पुराना
धो डाले सब मैल पुराना
भेद बिसार गले मिल जाएँ।

ऊँच-नीच का भाव बिसारे
मन में कोई खोट न लाएँ
अद्भुत जीवन-खेल रचाएँ।

धनी-निर्धनी, बली-निर्बली
सब कामों में हाथ बटाएँ
कर्मों मे नवीन गति लाएँ।

अपना अपना चुनाव करके
भिन्न-भिन्न व्यापार करे सब
किन्तु ध्येय निज एक बनाएँ।

तरह-तरह की पूजाओ से
एक सत्य को शीश नवाएँ
अतर से अभिन्न हो जाएँ
औ' सारे जग को चौंकाएँ।

## नमस्कार

मा तुम लो मेरा नमस्कार।
तुम सबसे ज्यादा प्यारी हो
हम सब कुछ तुम पर वार रहे
हम भोले-भाले बालक हैं
बस केवल तुम्हे पुकार रहे।
दो हमें ढेर-सा मधुर प्यार।

तुम ले लो सब आसू मेरे,
कोई दुख रोग न आ पाए,
हम भूल जायें रोना-धोना
औ' सदा फूल से मुसकाएं।
जीवन में आ जाए बहार।

इन हाथो मे अपना बल दो,
इन पाँवो में अपनी गति दो,
अंतर में अपनी इच्छा दो,
औ' मन में तुम अपनी मति दो।
दो अपनी गोदी का दुलार।

## अनन्तता के बालक

हम अनन्तता के बालक हैं
हम अनन्त को छू सकते हैं।
यह दुनिया बड़ी कहानी है
जिसका न आदि औ' अंत कहीं
कोई यदि कहना जाने तो
हम बिना थके सुन सकते हैं।

यह जगत् खेल का आगन है
कुछ भी आए कुछ भी जाए
यदि सदा खेलते रह पाए
तो यही स्वर्ग रच सकते हैं।

जग के कठोर आघात अगर
भोलेपन को न मिटा पाएं
तो नहीं मृत्यु का भय हमको
निश्चित सतत हो सकते हैं।

यदि अपने और बिराने का,
सपने औ' सच का भेदभाव
मिट जाय बालवत् श्रद्धा से
तो अमर यहीं हो सकते हैं।

सब काम हमको खेल है।
*गिनती हो या कि पहाड़ा हो,*
भाषाओं का कि अखाड़ा हो,
हम नहीं किसी से डरते हैं,
शिक्षक के ऊपर निर्भर हैं
हम खेल खेल पढ़ सकते हैं।
ओ गुरुजन रूखे नियमों का
बंधन ही हमको जेल है।

अंतर के भोले भाव लिए
हम खेला से मुसकाते हैं,
जग में कुछ नहीं निरर्थक है,
सब कुछ का मेल बिठाते हैं,
*यह नानाकारी जग हमको*
इक रंग बिरंगी खेल है।

तुम दिखा परीक्षा-भय हमको
सारा उत्साह गँवा देते,
रटने की आपाधापी में,
प्रतिभा का कोष लुटा देते,
मेरी अनन्त जिज्ञासा को
क्या पास और क्या फ़ेल है।

हम एक अथक जिज्ञासा ले
उत्सुक रहते, आतुर रहते,
प्रश्नों से तुम्हें थका देते
तुम उत्तर क्यों [illegible]
हम रुक सकते हैं कैसे फिर
जाते ज्यों शाश्वत खेल है।

# आनन्द तृप्ति

# स्वप्न-तरी*

अहो कौन यह आया ?

दीप-शिखा सम ललाट दीपित, दिनकर वर्ण कलेवर,
आया मेरे समीप चढ़ कर अग्निल स्वप्न-तरी पर,
तभी घुल उठी नीरवता इक मधुर गुह्य मर्मर में—
'अब आना है क्या ! तत्पर हो गई अग्नि अतर मे ?'

काप उठा मुन, छिपा हुआ कुछ अतर की पर्तों मे ।
याद आ गया, जिसे सँवारा था जीवन-हर्षों ने,
वह सब सुख सुहाग प्यारा, हो उठा सामने मूर्तित
जिसे छोडना ही होगा अब उसे, सर्वदा के हित !
चली गई बस स्वर्ण-तरी इतने मे,
गुमा गया स्वर्ण-देवता दुविधा में ।

बस जग की छाती के एक खोखलेपन के भीतर
शून्य रह गया उस सुख का, जो चला गया अब उडकर,
सदा सदा की खातिर हमसे नाता आज तोडकर,
क्योंकि प्रेम मर गया, पुराने हर्ष रह गये चुक कर ।
स्वप्न-तरी अब आती नही लौट कर ।
और न स्वर्ण-देव की मिलन घडी वर ।

## कृष्ण*

विकट, मधुर इस मर्त्य लोक में
जन्म लिया क्यों आत्मा ने,
आखिर इसका रहस्य इक दिन
बरबस जान लिया मैंने,
हुआ एक दिन मेरा भू के
तृषित हृदय में एकाकार,
कृष्ण चरण की लगन धरे जो
बढ़ा जा रहा दिव के पार।

देखी अविनश्वर नयनों की
यह मोहक मोहिनी अपार,
और सुनी उस प्रेम-बाँसुरी
की मैंने कामना-गुंजार,
एक अनवरत सुखाह्लाद ने
किया हृदय पर मेरे राज,
बस मेरे सारे दुख-सुख ने
मागी विदा सदा को आज।

निकट निकटतर और निकटतम
बंसी-ध्वनि बढ़ती आती
एक विचित्र सुखातिरेक से,
प्राण शक्ति सिहरी जाती,
प्रियतम के स्पर्शालिंगन में,
औ' सन्निधि-आकर्षण में,
सकल प्रकृति है बनी ठगी-सी
इक अनन्त सम्मोहन में।

इसी एक घटिका हित जीता
[redacted] रे सारा काल,
सिहर उठी सब जगती मुझमें
और हो उठी आज निहाल।

## नीलाभ पंछी*

मैं प्रभु का पछी नीलाभा।

उनके अनन्त नीले नभ मे
उम दिव्य समुन्नत निरभ्र मे
देवों औ' गधर्वो के हित,
मैं सभी स्वर्ग-दूतो के हित
अमृतम्, सत्यम् के स्वर गाता।

इम मर्त्य लोक से, शोक रहित
नभ में ज्वाला सम उठ जाता,
फिर उमकी दुखिया जन्म-भूमि
पर मैं उस शाश्वत आनँद के
अग्निल बीजो को बरसाता।

इम देश-काल सीमा से पर
अक्षय प्रकाश मे उडान भर
शाश्वत आनँद की सुषमा को
औ' आत्म-दृष्टि की महिमा को
इम भू पर हूँ उतार लाता।

मानिक नयनो से मैं सारे
लोकों को हूँ थाहा करता
शाश्वतता के गंगा-तट पर,
नन्दन के वसन्त वैभव मे
'विज्ञान' वृक्ष पर सुस्ताता।

अब ज्वलन्त अन्तर से मेरे
रह गया नही है कुछ गोपित
मन मेरा कुल रहित, [illegible]
आनन्द कला-दीक्षित, अमरा
इच्छा के गीतों को गाता।

# कौन*

गगन नीलिमा, कानन हरीतिमा में
किसके कर से रंजित रे यह आभा?
आकाश-गर्भ में सोए पवनों को
जगा दिया है किसने आवाहित कर
औ' जारी आदेश कर दिया अपना
भ्रमते रहने को अविराम बराबर?

लुप्त हो गया है वह हृदय-देश में,
तथा खो गया है वह प्रकृति-गुहा में,
और पा लिया मस्तिष्क में गया है
जहा से विचारों को रचता रहता:
यहाँ बुन उठा है वह पटु जादूगर
पुष्पों के रंग-रूप में, मुकुलन में,
पकडा गया दीप्त तारा-जाली में।

नर के नरत्व नारी की सुषमा में,
बाल हास्य औ' बाला की लज्जा में,
एक हाथ है जिसने कि आकाश में
महाग्रह बृहस्पति को सतत भ्रमाया,
औ' एक अलक की अद्भुत मज्जा में
सारी चतुराई का खर्च कराया।

ये सब कार्य है अनोखे औ' उसके
अवगुण्ठन हैं, उसके प्रतिबिंबन हैं,
पर तब वह है कहा, नाम क्या उसका?
[redacted] लिया कि नर या नारी
निराकार है वह या है साकारी?
दो है या कि अकेला, वह अलबेला?

इक बालक जिस पर हम सब न्योच्छावर,
वर्ण श्याम है, ज्योतिर्मय मुखमंडल,
इक स्वामिनी हमारी नारी रूपा
नग्ना, कराल वदना, रौद्र आनना।
लखा उसे गिरि-शिखरों पर ध्यानस्थित,
लोकों के हृदयों में कार्य-निमज्जित।

उसकी कार्य कला औ' चतुराई का
पीट ढिंढोरा देंगे हम दुनिया में,
उसे यातना और रभस में, दुख में,
इक अद्भुत आनन्द स्वाद है आता,
वह शोक में हमारे हर्ष मनाता,
हमें रुदन के हित मजबूर बनाता,
तब अपने आनन्द और सुषमा से
खींचकर हमें है फिर से ललचाता।

सब संगीत उसी की हास्य-तान है,
औ' सारी सुन्दरता प्रेमावेशी,
उसकी आनँदमय मत्त मुसकान है,
अपने जीवन उसके अंतर-स्पन्दन
और हमारे आनँद उसका परिणय–
राधा और कृष्ण का सहज आत्मलय,
प्रेम हमारा उनका मीठा चुम्बन।

वह चीजों में निगूढ़ एक वीर्य है
बिगुल-नाद में जो गूंज गूंज जाता,
व्योम-यान में वही सवारी करता,
वह ही त्रिशूल से अभिघातित करता;
बिना घाव के वह मार मारता है,
और वही करुणा से ओत-प्रोत
सतत युद्धरत वह केवल जग के हित
उसके अंतिम युग की और सिद्धि हित।

इन सब योगों की वेगवान गति में
युगों युगों की और प्रमत्त ऊर्मि में,
अनिर्वाच्य, सर्वज्ञात, महामहिम वह
एक मनीषी की अंतिम उड़ान के
उस पार वही सिंहासनासीन है
स्व-पीठियों पर, जो अनन्त औ' शाश्वत।

मनुष्य का प्रभु, उसका अनन्त प्रेमी
अपने हृदयों के निकटस्थ उपस्थित,
काश, कि हम उसका दर्शन कर पाए!
हम अपने ही दर्प से बने अँधे—
उर आवेगों के औ' बाह्य ढोंग से,
बंधे पड़े हैं अपने ही विचार से—
वही समझते अपने को स्वतंत्र है।

आदित्य में वही तो आयुहीन है
मृत्युहीन है,
निशीथ में प्रक्षिप्त उसी की छाया;
जब तम अंधा था औ' तमसावृत था,
यह सब एक अप्रकेत सलिलं था,
तब वह उसके भीतर समासीन था,
सर्वव्याप्त निरपेक्ष और एकाकी।

# नया चेतना-केन्द्र

प्रभु तेरे दर्शन से आज नया ही एक चेतना-केन्द्र खुल गया है।
अरे जिन्होंने *पूर्ण मिलन* का होगा आनंद चाखा,
और चेतना के संग तेरी साम्य मिलाकर राखा,
उनसे मेरा कदम आज भी दूर रह गया है।

मेरे उच्चादर्श भी मुझे अब अपूर्ण लगते हैं,
जहां पहुंचना है उस स्थल से बहुत दूर लगते हैं,
ऊँचे मूल्यों का भी सब आधार हिल गया है।

फिर भी पग में कहीं निराशा का संचार नहीं है,
नहीं थकन है, सुस्ताने का कहीं विचार नहीं है,
सतत प्रेरणा का इक शोध-निकेत खुल गया है।

जाने अब मेरा संकल्प कि क्या संभव कर डाले,
औ' बल धीरे-धीरे जग-आधार ही बदल डाले।
क्योंकि तुम्हारे नियम, कर्म का भेद पढ़ गया है।

आंधी तूफानों से फिर रुकने की बात नहीं है,
अज्ञान से मुंदा अब अपना कोई खात नहीं है,
क्योंकि तुम्हारे तप से विस्तृत विवर भर गया है।

*अतल गर्त से आर्त कंठ अविराम पुकार रहे तो,*
अरे हुआ क्या अशुभों के जो फन फुफकार रहे तो,
जब तेरा अस्तित्व जगत् में प्रकट हो गया है।

अंधकार को अपने रँग में अब प्रकाश रँग लेगा,
भू की पीडाओं का स्थान और आनंद ले लेगा,
दिव्य विजय पर क्योंकि पूर्ण विश्वास जम गया है।

... ...

प्रभु इस अद्भुत चमत्कार के अहो दिव्य निर्माता!
मेरे उर में यह आभार, हर्ष अब नहीं समाता!
मेरा श्रद्धा-सागर अपना अंत नहीं है पाता।

---

श्रीमाताजी की २९ मार्च सन् १९१४ की प्रार्थना का अनुवाद जो उन्होंने श्रीअरविंद के प्रथम दर्शन के बाद लिखी थी।

## प्रभु-मंदिर

सभी ठौर प्रभु का मन्दिर है और घडी सब पूजा की है।
तो फिर प्रतिदिन प्रतिछिन मेरे
नवोत्सर्ग का एक पर्व हो,
मेरे उठे हुए चरणों में,
नव आशा हो, दिव्य गर्व हो।

एक एक कामना अर्घ्य हो
कर्म कर्म मेरा तर्पण हो,
अधिक पूर्णतर औ' विशालतर
दिन प्रतिदिन मेरा अर्पण हो।

जिसमें अति उत्साहों औ'
आवेगो के भूकप नही हों
औ' सदेह तथा सभ्रम की,
जिसे छू गई गध नही हो।

कर्मों की दौड़ा-धूपी की,
जिसके पग में खनक नही हो,
और गर्व की आती जिसके
अंतर से कुछ भनक नही हो।

जो सागर सा शान्त, गगन मा
नीरव औ' नि:शब्द, गभिर हो,
जो भीतर मे अति सक्रिय हो
औ' बाहर से मूक बधिर हो।

श्रीमां की २२ फरवरी १९१४ की प्रार्थना का भावानुवाद।

जिसके पग की चाप-चाप पर
और किसी का सुनियन्त्रण हो,
औ' कर्मों की श्वास-श्वास पर
रूपांतर की लगी मुहर हो।

ऐसा शान्त अचचल मानस
बसे तुम्हारी परम शांति मे,
जाने अपने परम भाव को
पहुच तुम्हारी सुविश्रांति मे।

तन मन विकसे सतत तुम्हारे
केवल इंगित को अनुहारे,
और तुम्हारे चरणो पर ही
अतर अपने अनुभव वारे।

बस उस ऊँची चोटी से ही
मन फिर देखे और निहारे,
भीतर से अद्वितीय रह कर
बाहर विविध बहुलता धारे,

उस स्वर्गिक आनन्द-पुलक से
जीवन के सब कार्य सँवारे,
और वही से सब कुछ करने
को बस अपने हाथ पसारे।

प्रभु मेरे मद पूत हो उठा
कहा दुख है औ' पीडाएँ,
रोग शोक है कहां, कहा फिर,
है संदेह औ' निराशाएँ।

डूब गया है मेरा सब कुछ
अविचल एक शांति-सागर मे
देख रही है आखें तुमको
ही तुमको, चर और अचर में।

तो फिर बाह्य कर्म अपने ये
और परिस्थितियां कुछ भी हों,
किरण प्रवेश पा गई है तो
अंधकार घन कितना भी हो।

जान गई हू मैं इस जग मे
इक तुम ही तुम तो जीते हो,
इन सब रूपो-आकारो के,
पीछे तुम ही तुम बसते हो।

अपरिवर्तनीय उपस्थिति में
ही अपनी तुम बैठे-बैठे,
अजस्र गति संचार किया करते हो,
अगिन रूप निर्माण किया करते हो,
तुममे ही तो हैं सब श्वास चल रहे,
शाति, शाति वह शाति धरा पर उतरे।

# सावित्री का करणीय*

"उस सुनसान शिखर पर जहां कि 'आत्मा'
खड़ी 'शून्य' के सम्मुख एकाकी है,
जीवन का कुछ मतलब नहीं, प्रेम को
जहां खड़े होने की जगह नहीं है,
ऐसे महानाश की कोर पर पहुँच
अपने लिए वकालत करनी होगी,
जग की मृत्यु-गुफा में इस जीवन के
असहाय से बने दावे की उसको
सम्मुख आकर सुपुष्टि करनी होगी,
जीने और प्रेम करने के अपने
अधिकार की घोषणा करनी होगी।
और 'प्रकृति' की निर्दय कार्य-प्रणाली
अब उसको एकदम बदलनी होगी,
अपनी भूतकाल की बाधाओं पर
सभी तरह से निजात पानी होगी,
सभी पुराना चला आ रहा खाता
दुख-पीडा का बन्द कराना होगा,
तथा काल में आकर जनमाने से
अंतरात्मा पर चढ़ते जाते इस
चक्रवृद्धि ब्याज को चुकाना होगा,
'कर्म देवताओं' की असह गुलामी
से उसको आज़ाद कराना होगा,
और अक्षमाशील कठोर 'नियम' की
प्रतिकार से भरी इस धीमी गति को
वैश्विक दुख की गुरु आवश्यकता को,
इस भीषण त्याग और दुःखद अंत को
अपने पथ से दूर हटाना होगा।
और चीर कर अनन्त बाधाओं को
उसको उनके बाहर आना होगा,

अपने चिन्तन की गहराई लेकर
'महाशून्य' की इस दानव चुप्पी के
भीतर उसको प्रवेश पाना होगा,
अमर मृत्यु के एकाकी नयनो मे
नयन डालकर उसे घूरना होगा,
औ' निज निर्वसना आत्मा को लेकर
'अनन्त'-निशि की थाह लगानी होगी।"

(सावित्री महाकाव्य के अनुवाद से पर्व १ सर्ग २)

## ROSE OF GOD*

Rose of God, vermilion stain on the sapphires of heaven,
Rose of Bliss, fire-sweet, seven-tinged with the ecstasies seven!
Leap up in our heart of humanhood, O miracle, O flame,
Passion-flower of the Nameless, bud of the mystical Name.

Rose of God, great wisdom-bloom on the summits of being,
Rose of Light, immaculate core of the ultimate seeing!
Live in the mind of our earthhood; O golden Mystery, flower,
Sun on the head of the Timeless, guest of the marvellous Hour.

Rose of God, damask force of Infinity, red icon of might,
Rose of Power with thy diamond halo piercing the night!
Ablaze in the will of the mortal, design the wonder of thy plan,
Image of Immortality, outbreak of the Godhead in man.

Rose of God, smitten purple with the incarnate
divine Desire,
Rose of Life, crowded with petals, colour's lyre!

Transform the body of the mortal like a sweet and
magical rhyme;
Bridge our earthhood and heavenhood, make
deathless the children of Time.

Rose of God, like a blush of rapture on Eternity's
face,
Rose of Love, ruby depth of all being, fire-passion
of Grace!
Arise from the heart of the yearning that sobs in
Nature's abyss:
Make earth the home of the Wonderful and life
beatitude's kiss.